फाग विशेषांक

शोध और सृजन की
प्रमुख त्रैमासिकी

मामुलिया

अंक-चार
पौष, माघ, फाल्गुन, सं० २०३८
बुंदेलखंड साहित्य अकादमी प्रकाशन
वार्षिक सहयोग : पंद्रह रुपया
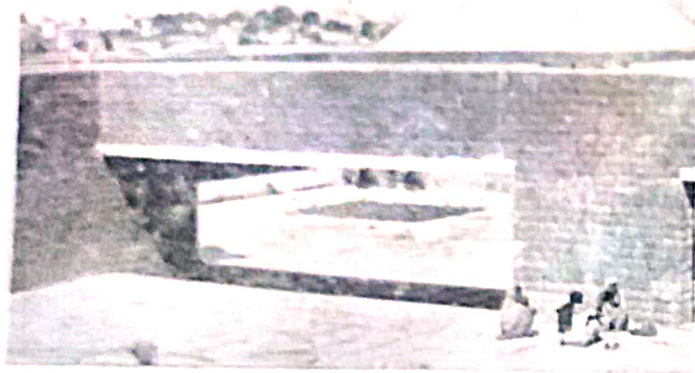
पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय, मध्यप्रदेश, भोपाल के ज्ञापन क्र०/स०शि०/अ/३/८१-८२/१०२२ भोपाल, दिनांक १६-३-८२ द्वारा मध्यप्रदेश की समस्त ग्राम पंचायतों एवं जनपद पंचायतों के लिए स्वीकृत।

फाग प्रतियोगिता

जगनिक शोध संस्थान, महोबा के, तत्वावधान में आयोजित 'फाग प्रतियोगिता' में अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए विजयी फाग दल 'करहरा कलाँ' (हमीरपुर)

एक अपील मामुलिया के सहयोगियों के नाम

- बुन्देलखण्ड की संस्कृति, साहित्य और कला की प्रतिनिधि एकमात्र पत्रिका का यह चौथा अंक विशेषांक है और वर्ष का अंतिम उपहार।
- इन चार अंकों से आप आश्वस्त हो गये होंगे कि पत्रिका संस्कृति, साहित्य और कला के लिए कितनी समर्पित है।
- वर्ष भर की सामग्री की बानगी से आपको अन्दाज लग सकता है कि पत्रिका कितनी उपयोगी है। एक झलक देखें—

—शोध : ३३ शोधलेख, ३ अज्ञात कृतियों का परिचय, २ अज्ञात कृतियों के अंश एवं एक पूरी कृति, ३५ फागकारों की प्रकाशित फागें।

—सृजन : कविताएँ—२६ हिन्दी कवि और ५३ बुन्देली, कहानियाँ—६ हिन्दी कहानीकार और ५ बुन्देली, वार्ताएँ—३ बुन्देली, संस्मरण—२, व्यंग्य—२, ललित निबंध और लघुकथाएँ—३

—विशिष्ट : बुन्देली अनुवाद—२, बुन्देली शब्दों की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या—४, पाठ—निर्धारण—२, लोकगीतों का शुद्ध पाठ स्वरलिपि सहित—६, प्राचीन बुन्देली गद्यांश—७ और साहित्य-संस्कृति—कला—समाचार।

- पत्रिका को एक तरफ देश के जाने माने विद्वान लेखकों और साहित्यकारों—स्व० माखनलाल चतुर्वेदी, स्व० सेठ गोविन्ददास, स्व० दीवान प्रतिपाल सिंह, ठा० वा० वि० मिराशी, प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी, श्री कृष्णानंद गुप्त, श्री प्यारेलाल श्रीमाल आदि का सहयोग प्राप्त हुआ है, तो दूसरी तरफ इस क्षेत्र में प्रतिष्ठित तथा विशिष्ट दिशाओं में ख्यातिलब्ध विद्वानों एवं साहित्यसर्जकों का। अकादमी उन सब की ऋणी रहेगी।
- प्रथम वर्ष में सहयोगी पत्रिका के प्रतिनिधियों, आजीवन सदस्यों एवं वार्षिक सदस्यों सभी के प्रति भी अकादमी आभारी है।
- **इस अंक के साथ पत्रिका का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है, कृपया अगले वर्ष का वार्षिक शुल्क १५ रु० धनादेश या बैंकड्राफ्ट से यथाशीघ्र भेजकर उदार सहयोग प्रदान करें एवं पत्रिका की प्रतियाँ पहले से सुरक्षित करा लें।**
- प्रथम अंक से ही श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन झाँसी ने वर्षभर का विज्ञापन सुरक्षित करवाकर अपना उदार सहयोग दिया था, उनके इस सौहार्द के प्रति अकादमी आभारी है एवं अन्य विज्ञापनदाताओं के प्रति भी।
- अगले वर्ष के लिए विज्ञापन का स्थान सुरक्षित कराने के लिए तुरन्त सम्पर्क करें एवं संस्था की लक्ष्यपूर्ति में सहायता करें।

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर, म० प्र० पंजीयन सं० १०६२५

पत्रिका के प्रतिनिधि

१. महोबा : डा० वीरेन्द्र निर्झर, सचिव, जगनिक शोध-संस्थान, महोबा, जिला हमीरपुर, उ० प्र० ।

२. राठ : डा० हरगोविन्द सिंह, बी० एन० वी० महाविद्यालय, राठ, जिला हमीरपुर, उ० प्र० ।

३. ललितपुर : प्रो० बिहारीलाल बबेले, नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर, उ० प्र० ।

४. उरई : श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' एडवोकेट, राठ रोड, उरई, उ० प्र० ।

५. दतिया : डा० कृष्णबिहारी लाल पाण्डेय, शासकीय महाविद्यालय, दतिया, म० प्र० ।

६. टीकमगढ़ : श्री वीरेन्द्र शर्मा, बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय, कुंडेश्वर, टीकमगढ़, म० प्र० ।

७. जबलपुर : डा० कृष्णकुमार हूँका, १६२, कोतवाली वार्ड, जबलपुर—२, म० प्र० ।

८. बिजावर : डा० नाथूराम चौरसिया, पिपेट (बिजावर), जिला छतरपुर, म० प्र० ।

९. नौगाँव : श्री रामरतन अवस्थी, शासकीय उ० मा० विद्यालय, नौगाँव, जिला छतरपुर, म० प्र० ।

१०. छतरपुर : श्री वीरेन्द्र शर्मा कौशिक, अवस्थी कम्पाउण्ड, न्यू कालोनी, छतरपुर, म० प्र० ।

११. भोपाल : श्री प्रेम नारायण रूसिया, ३४/४ साउथ टी० टी० नगर, भोपाल, म० प्र० ।

१२. महाराजपुर : श्री बद्री प्रसाद गुप्त, छत्रसाल महाविद्यालय, महाराजपुर, जिला छतरपुर, म० प्र० ।

१३. कबरई : श्री किशोरी लाल गेंडा, ग्रेन डीलर, कबरई, जिला हमीरपुर, उ० प्र० ।

१४. मऊरानीपुर : श्री रामसेवक नीरवरा, अलयाई मुहाल, मऊरानीपुर, जिला झांसी, उ० प्र० ।

१५. दमोह : डा० छबिनाथ तिवारी, शासकीय महाविद्यालय, दमोह, म० प्र० ।

१६. उज्जैन : श्री ब्रजलाल मिश्र, नायब तहसीलदार, कलैक्ट्रेट, उज्जैन, म० प्र० ।

१७. बांदा : श्री अवध बिहारी गुप्त, दुर्गा बाजार, बन्योरा, बाँदा, उ० प्र० ।

१८. भाण्डेर : डा० शंकरलाल शुक्ल, भाण्डेर, जिला ग्वालियर, म० प्र० ।

१९. झांसी : श्री हरनारायण द्विवेदी, १०६/८ लक्ष्मण गंज, झांसी, उ० प्र० ।

२०. लखनऊ : श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा, कार्यालय प्रमुख समाचार भारती ए/११ पार्क रोड (योजना) लखनऊ ।

२१. इंदौर : श्री राजेश बादल द्वारा नई दुनिया, ६०/१ केशरबाग रोड, पो० बा० ४५, इन्दौर—४५२००२ एवम्

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर—४७१००१, म० प्र० ।

अकादमी के मनोनीत सम्मानित सदस्य

- श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, चौबयाना मुहाल, फीरोजाबाद, उ० प्र० ।
- डा० रामकुमार वर्मा, साकेत, ४ प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद, उ० प्र० ।
- प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी, एच/१५ पद्माकर नगर, मकरौनिया, सागर, म० प्र० ।
- श्री केदार नाथ अग्रवाल, सिविल लाइन्स, बांदा, उ० प्र० ।
- श्री कृष्णानन्द गुप्त, गरौठा, झाँसी, उ० प्र० ।
- श्री हरिहर निवास द्विवेदी, मुरार, ग्वालियर, म० प्र० ।
- श्री राजेन्द्र अवस्थी, सम्पादक कादम्बिनी, हिन्दुस्तान टाइम्स लि०, नयी दिल्ली—१ ।
- डा० हरवंश लाल शर्मा, कुलपति, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, पदेन ।
- कुलपति, सागर विश्वविद्यालय, सागर, पदेन ।
- कुलपति, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर, पदेन ।
- डा० कृष्णकान्त तिवारी कुलपति, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, पदेन ।
- श्री मायाराम सुरजन, अध्यक्ष, म० प्र० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भोपाल, पदेन ।
- जिलाध्यक्ष, जिला छतरपुर, म० प्र०, पदेन ।
- अध्यक्ष, नगरपालिका परिषद, छतरपुर, पदेन ।

मामुलिया पत्रिका के आजीवन सदस्य

- छतरपुर : श्रीमती कमलेश अग्रवाल, श्री हरिसिंह घोष, श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', श्रीमती प्रमोद पाठक, श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त, श्री चिरंजीव अग्रवाल, श्रीमती कांति खरे, श्री महेशचन्द्र चौरसिया, श्री घासीराम सेठ, श्री अरुण श्रीवास्तव, श्री सुरेन्द्र शर्मा ।
- महोबा : डा० वीरेन्द्र कुमार 'निर्झर', श्री बाबूलाल गुप्त, श्री श्रीकृष्ण चौरसिया ।
- उज्जैन : श्री ब्रजलाल मिश्र
- कर्री : श्री आशा राम त्रिपाठी
- पिपेट : डा० नाथूराम चौरसिया
- टीकमगढ़ : श्री वीरेन्द्र शर्मा
- पृथ्वीपुर : श्री रतिभान तिवारी 'कंज'
- भोपाल : श्री प्रेम नारायण रूसिया
- महाराजपुर : श्री बद्री प्रसाद गुप्त
- जबलपुर : डा० कृष्णकुमार हूँका
- कबरई : श्री किशोरी लाज गेंडा
- उरई : श्री राम नारायण अग्रवाल
- दतिया : डा० कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय

[मात्र सौ रुपये प्रदान कर 'मामुलिया' के आजीवन सदस्य बनने का कष्ट करें ।]

परख-परखाव

•

शोध संस्थान में संदर्भ हेतु सुरक्षित

मैं इस अंक (मामुलिया का अंक २) को संदर्भ हेतु शैलचित्र शोध-संस्थान मे रखना चाहता हूँ, उस हेतु यदि शुल्क की आवश्यकता हो, तो लिखें।

—डा० वी० एस० वाकणकर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

नये मोड़ की प्रेरक

बुन्देली साहित्य, कला, संस्कृति से जुड़ी सारगर्भित सामग्री से भरपूर यह पत्रिका आश्वस्त करती है कि बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक चेतना के इतिहास के पुनर्लेखन एवं सम्प्रेषण कार्य में एक नया मोड़ आयेगा।

—डा० कृष्णमोहन सक्सेना, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।

प्रतिश्रुति वरेण्य

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी का यह प्रकाशन निश्चय ही श्लाघनीय है। बुन्देली साहित्य और संस्कृति के प्रसार एवं उसे प्रकाश में लाने के लिए इसकी प्रतिश्रुति भी वरेण्य है।

—डा० भगवती लाल राजपुरोहित, सान्दीपनि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन।

कवितावली का खरखौंकी शब्द

आदरणीय कृष्णानन्द जी गुप्त द्वारा खरखौंकी शब्द की व्याख्या से अर्धसहमत हूँ। वास्तविकता यह कि खरखौंकी शब्द खों-खों करना, खौंकियाना, खिकयाना, खिच्चयाना, खिसयाना आदि शब्दों का रूपान्तर है, जिसका अर्थ बुन्देलों में क्रोधित होना, गुस्सा करना किया जाता है। खर शब्द का अर्थ खरे, खरी के रूपान्तर मैं हैं, जिसका अर्थ अधिक तेज, अत्यधिक लिया जाता है। गुसाईं जी की पंक्ति में खरखौंकी शब्द का अर्थ मात्र अधिक क्रोधित होना, अधिक प्रकोप करने से है। गत अंक में आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल की भी व्याख्या देखी, परन्तु वह विषय से परे है। बुन्देली का भाषाविज्ञान अपनी महत्ता अलग रखता है, उसका सीधा संबंध अपभ्रंश से है और भाषाओं का अर्थ इस पर थोपना भ्रमात्मक होगा।

—अवधकिशोर श्रीवास्तव 'अवधेश', ३५०/२ नई बस्ती झाँसी।

श्री गोस्वामी जी की कवितावली के 'खरखौंकी' शब्द के विषय में तथ्य यह है कि 'खरखौंकी' कोई शब्द नहीं है और न ही 'खौंकी'। लोगों ने अपनी तरफ से एक या दो शब्द मान लिये हैं जबकि उक्त शब्द 'खरखौं' या 'खर-खौं' है और 'की' अलग है, जोकि कारक की विभक्ति के रूप में प्रयुक्त है। नालंदा विशाल शब्द-सागर में खौं का अर्थ खत्ती, गड्ढ़ा आदि दिया गया है। इस प्रकार खर-खौं=घास-पात की खाई या खत्ती हुआ। अतः उक्त शब्द का अर्थ 'आग' अथवा खाने वाली (भक्षण करने वाली) नहीं हो सकता। चूंकि दवारि शब्द का अर्थ दावानल स्पष्ट है, अतः खरखौंकी का अर्थ 'आग' मान लेना उचित नहीं है। श्री कृष्णानन्द जी गुप्त ने उक्त शब्द को बुन्देली की खरखौंकना क्रिया से जोड़ा है। बुन्देली में 'खरखौंचना' होता है, जो 'खुरचने' का अर्थ देता है। खरखौंकना और खरखौंचने में उच्चारण का फर्क हो सकता है, पर गुप्त जी ने उसका अर्थ तिड़ी-बिड़ी करना, नष्ट करना किया है। उक्त पंक्ति में यह अर्थ लगाने से भी बात स्पष्ट नहीं होती। मेरी समझ में 'लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खरखौंकी' का अर्थ है— 'जिस प्रकार हनुमान जी ने घासपात की खत्ती की तरह लंक को दहका दिया था, उसी प्रकार वन में लगी हुई आग पहाड़ की तरह ऊँची लपटें छोड़ रही है।'

—मोती लाल बिलैया, गांधीगंज, मऊरानीपुर (झाँसी)

कवि जगतनन्द और उपखाने सहित दशम स्कंध चरित्र

मामुलिया के प्रथम अंक के पृष्ठ ७१ में लेखक ने लिखा था जगतनंद है कि (शिवसिंह सरोज के के अतिरिक्त) हिन्दी के अन्य किसी संदर्भ ग्रंथ में इस कृष्णभक्तकवि या जगतनंद का नामोल्लेख तक नहीं है और एक कवित्त के अतिरिक्त कवि का शेष कृतित्व अद्यावधि अप्रकाशित और अनुपलब्ध है। इस संबंध में मेरी आपत्ति यह है कि लेखक महोदय ने मिश्रबंधु विनोद देखने का कष्ट नहीं किया। मिश्रबंधुओं ने केवल एक बार ही नहीं, अपितु भ्रमवश दो बार अलग-अलग नामों से इस कवि का उल्लेख किया है। (मिश्रबंधु विनोद सं० ३०५ जगनंद और सं० ४७४ जगतानन्द) इसके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

जहाँ तक प्रस्तुत कवि की रचनाओं के प्रकाशन का प्रश्न है, काफी पहले ही सन् १६३२ ई० में विद्या विभाग काँकरोली द्वारा 'जगतानन्द' नाम से हो चुका है। 'जगतानन्द' में इस कवि के छः ग्रंथ—श्रीवल्लभ वंशावली, श्री गुसाईं जी की वन-यात्रा, व्रज वस्तु वर्णन, व्रज ग्राम वर्णन, दोहरा साखी और उपखाने सहित दशम कथा दिये गए हैं। स्पष्ट है कि जिस कृति का परिचय लेख में दिया गया है, वह भी प्रकाशित हो चुकी है।

—देवेन्द्र कुमार सिंह, २८० बिड़ला छात्रावास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नाना रंग रागमयी सौम्य सुन्दर सुहाती है

सांस्कृतिक साहित्यिक शब्द-सुमनों से सजी,
सभी सज्जनों को सौम्य सुन्दर सुहाती है।
घर-घर जाती हरषाती सरसाती हियो,
नीति-प्रीति बतलाती जो सप्रीति भाती है।

नाना रंगरागमयी किन्तु एकरूप किये,
दृश्य दिखलाती मन भाती चली जाती है।
ऐसी 'मामुलिया' धन्य देखो 'योगेन्द्र' सतत,
सुजन समाज जिसे आज अपनाती है॥

—बच्ची लाल गुप्त 'योगेन्द्र', चिरगाँव (झाँसी)

बच गईं लोकगीत की तानें

अपुन नें नैनू कैसौ लौंदा प्यारी नयी नुहारी अपनी ई 'मामुलिया' पत्रिका में गीतन की स्वर-लिपि निकार कें हमाये ई बुन्देली लोकगीतन के गवैया भैयन के लानें वे पुरानी रसभरीं प्यारीं मनललचाउन तानें जो नौनें के भूलबिसर गईं तीं, फिर सें बता दईं। नइतर तौ आजकाल के नये गवैयन भैयन नें इन बिचारे लोकगीतन की पांव-पसुरियाँ टोरकें उनें अपनी राय उर धुन कौ गुलाम बना लओ तो। अपुन की जा भौतउ बड़ी मैनत देखकें हमें सोऊ भारी खुसी भई कै जौन हम कभऊँ कछू लौ नईं लिखो करत ते, अब हमनें सोऊ जा फाग लिखी ती—

बच गईं लोक गीत की तानें, आँगेकन के लानें।
नये गवैयन के मसकें कई लोकगीत लँगड़ाने।
'मामुलिया' में स्वरलिपि पाकें जागे राग पुराने।
भलौ करो जौ संपादक जू कौन तराँ जस मानें।
काव्य 'कुंज' में जनम-जनम लौ जौ जस अपुनौ रानें॥

—कुंजी लाल पटेल, बसारी (छतरपुर)

बुन्देलखण्ड की ज्योति

मामुलिया का तीसरा अंक एक बार जब पढ़ना आरम्भ किया, तो समाप्त किये बगैर छोड़ नहीं सका। बुन्देली भाषा की कहानियाँ बड़ी प्रिय लगीं। और क्या लिखूँ, ''मामुलिया' मामुलिया नहीं, बुन्देलखण्ड-ज्योति है।

—लोकेन्द्र सिंह 'नागर', कम्पनी कमांडर, घाटीगाँव, ग्वालियर।

मामुलिया

वर्ष १ अंक ४

फाग-विशेषांक

शोध लेख

फाग-संग्रह

जोड़ की फागें

नयी फागें

दो फागें

गीति / गीतिका

व्यंग्य / कहानी

स्तम्भ

- सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
- सहसम्पादक : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'
- सम्पादन-सहयोग : डा० कृष्ण कुमार हूँका, सुरेन्द्र शर्मा, डा० हरिसिंह घोष
- समाचार-सम्पादक : वीरेन्द्र शर्मा कौशिक

अपने मन मानिक के लानें
सुगर जौहरी चानें

•

फागन कौ अनमोल खजानौ : बुंदेली कौ गानौ

बुंदेली फागों का खजाना अनमोल है । हर गाँव में उसकी टकसाल, इसलिए यह कभी खाली नहीं होता और हर गाँव वाले को उसकी ललक, इसलिए मोल कभी कम नहीं होता ।

फागें केवल लोकमुख में नहीं हैं, लिखित भी हैं । हस्तलिखित पाण्डुलिपियों और फागगायकों के रजिस्टरों में ढेर की ढेर । पुराने फागकारों की कई रंगतों की और नये लोककवियों की नये प्रयोगों की ।

अनेक भण्डारों को देखकर लगता है कि बुंदेली लोककाव्य की यह विधा सबसे आगे है । बहुत समृद्ध और निरन्तर विकासोन्मुख । अगर कोई उसे बुंदेली का आभूषण कहे, तो इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं ।

उयै परखबे ऊकी आँखन देखौ पुन पहचानौ

वह खजाना ही नहीं उसकी हर फाग पुकारती है कि उसे देखो और पहचानो । किसी चश्मे से नहीं, वरन् उसी की आँख से । कुछ फागों को देखकर लिये गए निर्णय उचित नहीं कहे जा सकते ।

पहले हस्तलिखित फागकाव्य की खोज हो, मौखिक रूप में प्रचलित गीतों को लिपिबद्ध किया जाय और फिर उसके संकलन-संग्रह का जोरदार प्रयास चले एक अभियान की निष्ठा से संप्रेरित ।

अगला कदम है—फागों का पाठ-निर्धारण । अभी तक जो संग्रह निकले हैं, उनमें मौखिक परम्परा की इकन्नी-चवन्नी वाली फागें हैं । लोकमुख में जीवित फाग का आधार ही काफी नहीं है, वरन् हस्तलिखित ग्रंथों को भी प्राथमिकता देना होगा ।

फाग का रूप, सजाव-शृंगार, अनबोलौ भाव और बोल की भंगिमा सब कुछ की पहचान के लिए उसी परिवेश, उसी जलवायु और उसी आत्मद्रव में डूबने की जरूरत है । अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ।

फागन कौ इतिहास पुरानौ पै अबलों अनजानौ

साहित्य की पहचान उसकी ऐतिहासिक चेतना से है । फिर लोकसाहित्य भी तो साहित्य है, उसे इतिहास-लेखन से बाहर क्यों किया गया । वस्तुतः लोक साहित्य भी युग से प्रभावित रहता है, उसी की बात कहता है और उसी के

अनुरूप बदलता है। बुंदेली फागकाव्य का अपना इतिहास है, जिसकी झलक इस विशेषांक से मिलेगी।

फागकाव्य का इतिहास-लेखन इसलिए आवश्यक है कि वह लोकसाहित्य के विद्वानों के सामने एक ऐसा उदाहरण पेश करेगा, जो रूढ़िबद्ध मान्यताओं की असलियत खोल सके।

भाखा बस्त गायकी उपमा रस लूटौ मनमानौ

फाग में क्या नहीं है? उसकी विषयवस्तु गाँव की संस्कृति को चित्र की तरह उतार देती है, सहज भावों की प्रकृत भंगिमाओं को निश्छल रूप में टाँक देती है और लोकजीवन के व्यवहारों को मन की गहराई तक भेज देती है। उसकी मोहनी भाषा, टटकी उपमाएं, मधुरिमाबोरी गायकी और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति क्या काव्य-शिल्प के दायरे में नहीं आते, जो सुधी विद्वज्जन उनसे परहेज करते हैं। फागों के शिल्प की समीक्षा इस ठहराव को तोड़ेगी।

फागगायकी पर नजर रखना भी जरूरी है। फाग के कुछ प्रकार लुप्त होते जा रहे हैं। आकाशवाणी और सिनेमा उनकी गायकी पर गहरा असर ला रहे है। कहीं ऐसा न हो कि पुरानी गायकी नष्ट हो जाय, इसलिए उसे जीवित रखना बहुत बड़ी जिम्मेदारी है

काल लुटेरौ लूटन चाउत जुरमिल करौ ठिकानौ

काल रूपी लुटेरा अपनी आँखें गड़ाये है, कहीं सारा खजाना लुट न जाय। इसलिए अकादमी पुकार-पुकार कर कहती है कि फागों की खोज करो, उन्हें सुरक्षित करो, उनकी चौकसी करो और उनके इतिहास, व्याख्या एवं समीक्षा द्वारा उन्हें संसार के सामने उनके आसन पर प्रतिष्ठित करो।

अकादमी आपकी है, उसे फाग-रतन प्रदान करें और वह विश्वास दिलाती है कि वह उस कठोर काल-लुटेरे से बचाकर आपकी अमानत प्राणों से लगाकर रखेगी, उन्हें प्रकाशित करेगी और उनका इतिहास लिखेगी। 'कात 'प्रसाद, उठा लेव बीड़ा पैन आपनौ बानौ।' अकादमी की आवाज सुनें न सुनें, आपकी मरजी।

—सम्पादक

फाग-बैंक

अकादमी पुराने और नये फागकारों का बैंक खोल रही है। उसके लाकर्स में अनमोल फागें जमा कीजिए। विश्वास कीजिए कि आपकी दी गयी फागें, फागों की पाण्डुलिपियाँ और फागकारों की जानकारी अमानत की तरह सुरक्षित रहेंगीं। उनके संग्रह प्रकाशित होंगे और साहित्य के रिजर्व बैंक की पूँजी बढ़ने से आप धनी होंगे, समाज में समृद्धि आएगी।

—सचिव, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

फागों के शोध-पत्र फागुन के नाम
बौरी फिर अमरराई आओ अबिमरा

•

फागों के शोधपत्र उस भूले फागुन के नाम लिखे गये हैं, जो किसी दूसरे सम्मोहन की कैद में है। इतने शोधलेखों से शायद वह लौट सके और शायद फागों का सौभाग्य फिर अमर हो जाए। एक-एक लेख फागों की कहानी कहता है और लगता है कि अमराई बौराने लगी है। भौंरेगुं जार करने लगे हैं कोकिलें कूक उठी हैं, और सरसों फूल रही है। इस ऋतु में यदि फागुन न आया, तो फिर कब आएगा। आइए, हम सब और तमाम लेखों को भेजें ताकि फागुन को आना ही पड़े। 'मामुलिया' उन सब लेखों को सजा-सजा कर भेजेगी, तब कोई संदेह नहीं कि कई फागुन उगेंगे। सिर्फ फगुनाह बनी रहे, फागुन की क्या हस्ती जो आनाकानी करे। मैं समझता हूँ कि इस चुनौतीभरे क्षणों में हर लेख अभि-लेख-सा खड़ा हो गया है, आप उसे स्वयं पढ़ें और शायद यही महसूस करेंगे।

—सम्पादक

The poetry of a people takes its from the people's speech and in turn gives lfife to it.

—T. S. Eliot : The use of Poetry and the use of criticism, p. 5.

लोक लाज तज राज रंक निरसंक बिराजत ।
जोई भावत सोइ कहत करत पुन हँसत न लाज्त ।
घर घर जुवती जुवन ओर गहि गांठनि जोरहिं ।
बसन छीन मुख मीड़ आंज लोचन तिन तोरहिं ।
पटवास सुबास अकास उड़ि भूमंडल सब मंडियो ।
कह केसवदास बिलासनिधि फागुन •न छंडियो ।।

—महाकवि केशवदास : कबिप्रिया, १०/३५

अतीत वैभव की एक वासन्ती स्मृति

बुन्देलखण्ड का वसन्तोत्सव

• डा० अयोध्या प्रसाद द्विवेदी

भारतीय साहित्य और संस्कृति में वसन्त ऋतु को अतिशय महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है । वैदिक एवं परवर्ती साहित्य में समान रूप से इसका उल्लेख नववर्षारम्भ के रूप में पाया जाता है । एक वर्ष के छः ऋतुओं का चक्र इस वसन्त से ही प्रारम्भ होता है-'मुखं व एतद्दतूनां यद्वसन्तः' (तै० १।१।२।६-७)। इस ऋतु के अन्तर्गत चैत्र और वैशाख ये दो माह गिने जाते हैं । चैत्र मास में ही सूर्य अपनी द्वादश राशिचक्र के प्रथम राशि मेष में प्रवेश करता है । यही कारण है कि चैत्र या वसन्त को नववर्ष के आरम्भ का काल माना गया है । ब्रह्मपुराण का यह कथन कि,

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ।
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ।

'ब्रह्मा ने चैत्रमास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय होने पर संसार की रचना की' प्रतीकात्मक ढंग से उसी तथ्य की ओर इंगित करता है । इसी समय प्रकृति अपना परिधान बदलती है । वन, वृक्ष, वल्लरियां का अंग-प्रत्यंग रंग-बिरंगे नूतन किसलयों, कुसुम-स्तवकों से अलंकृत हो अनोखी छटा बिखेरता है । प्रकृति को सुरम्य शृंगार देने वाले और कण-कण को मधुर सौरभ-संभार से संतृप्त करने वाले कुसुमाकर के इसी अनुपम विलास के कारण ही संभवतः भगवान् श्रीकृष्ण को कहना पड़ा कि—'ऋतूनां कुसुमाकरः' अर्थात् ऋतुओं में मैं वसन्त हूं । क्योंकि, इस सृष्टि में जो-कुछ-भी श्री–सम्पन्न है, विभूति-भूषित है, ऐश्वर्य-मण्डित है, ओज और तेज से प्रदीप्त है—वह सब, उसी परम

भागवत प्रकाश का विशेष अंश है। वसन्त की इसी दिव्यता से अभिभूत हो भोजदेव ने कहा था—'ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः' (समराङ्गणसूत्रधार, ६।१२)। यही नहीं, वातावरण में ऊष्मा की क्रमिक वृद्धि का भी यही काल है जिससे, पुष्पों में, औषधियों में मधुरस की निर्मिति का यही अवसर होता है। वैशाख में उसका परिपाकमात्र होता है। इस दृष्टि से भी ये मधु (चैत), माधव (वैशाख) वासन्तिक मास कहे गए हैं—

'स यद्वसन्तेऽओषधयो जायन्से वनस्पतयो पच्यन्ते तेनो हेतो मधुश्च माधवश्च' (शत० ४।३।१।१४)।

ऋग्वेदसंहिता के दार्शनिक पुरुषसूक्त में, जहाँ विराट्पुरुष—हवि से मानस-यज्ञ की संकल्पना की गई है, वसन्त को आज्य (घृत) के रूप में कल्पित किया गया है—'वसन्तोऽस्यासीदाज्यम्' (१०।६०।६)। इसी प्रकार, छान्दोग्योपनिषद् में सामोपासना के प्रसंग में भी प्राथमिकता के आधार पर ही वसन्त को 'हिंकार' कहा गया है—

'वसन्तो हिंकारो, ग्रीष्मः प्रस्तावो, वर्षा उद्‌गीथः,
शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्' (२।५।१)।

जिसका तात्पर्यार्थ यही है कि वर्ष के प्रारम्भ की सूचना लेकर हुँकारता हुआ, हिन-हिनाता हुआ ऋतुराज प्रवेश करता है। तभी तो कवियों ने बार-बार मधुर-कण्ठ कोकिला और पिंगल आम्र-मजरी को वसन्तदूत के रूप में चित्रित किया है—

उन्मत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव।
अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन॥
(मालविकाग्निमित्रम्, ३।४)।

आएल ऋतुपति राज वसंत।
....
मौलि रसाल मुकुल भेल ताम।
मुमुरवहिं कोकिल पंचम गाय।
(विद्यापति)।

कोयल न कूजे तो वसन्त का आना घोषित नहीं होता, भले-ही नव पत्र-पुष्पों से बगीचा लहरा रहा हो—

आधी बगिया में आम बौरे,
आधी में इमली बौरे हो।

तबहूँ ने बगिया सुहावन
एक रे कोइल बिनु हो॥

ये सीधे-सादे लोकगीत इस बात के प्रमाण हैं कि भारत की धरती का हर कोना, समाज का हर वर्ग वसन्त की मादकता से झूम-झूम उठता था। प्रकृति की मुसुकान-सुरभि के साथ हर व्यक्ति अपना दुःख-दर्द भूलकर आमोद-प्रमोद और उल्लास-उमंग के वातावरण में डूब जाता था। तभी तो, ऋत्युद्रेक प्रकृति के वासन्ती वैभव से अभिभूत एवं अनुरक्त भारतीयों ने इसे उत्सव के रूप में मनाना शुरू किया और, यह 'वसन्तोत्सव' कालान्तर में 'मदनोत्सव' बन गया। क्यों न हो ऐसा? वसन्तसखा 'काम' जो ठहरा! जिसके शरसन्धान से वसन्त के समय में ही योगिराज शिव की भी समाधि भंग हो गई। समाधिस्थ महेश की उस शान्त एवं पावन वनस्थली को क्षण भर में एक विचित्र राग-अनुराग ने मथ डाला—सभी जीव-युग्मों में भाविक चेष्टाएँ अभिव्यक्ति पाने लगीं। भ्रमर अपनी प्रियतमा के साथ एक ही कुसुम-पात्र में मधुपान करने लगा, स्पर्श-सुख से आँखें बन्द किए खड़ी अपनी प्रियतमा हरिणी को कृष्णसार मृग अपनी सींग के नोक से खुजलाने लगा। हथिनी प्रेम-विभोर हो कमल-पराग से सुवासित जल को अपने सूँड़ में भरकर अपने प्रियतम हाथी को पिलाने लगी। किन्नरगण गाते-गाते बीच में ही रुककर अपनी प्रियतमा किन्नरियों के मुख चूमने लगे। नव किसलय रूपी अधरोष्ठों वाली एवं पुष्पों के स्तवकस्तनों वाली लता-वधुओं ने अपने विनम्र भुज-बन्धनों को तरु-कण्ठों में डाल दिया (कुमारसंभवम्, ३।३५—३६)। प्रकृति के अणु-अणु को आन्दोलित करने वाले काम-कुसुमाकर की प्रगाढ़ मैत्री के आगे बड़े-बड़े संयमी हिल गए। फिर तो, रति-पति काम की पूजा होने लगी। बौर के आते ही उत्सव का प्रारम्भ होता और, आम्रबौर काम की अर्चना में समर्पित की जाती—

तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहिदधणुअस्स।
पहिं अजणजुवइलक्खो पञ्चब्महिओ सरो होही॥
(शाकुन्तलम्, ६।३)।

(हे आम्रमंजरी, मैं तुम्हें धनुषधारी कामदेव के लिए समर्पित कर रही हूँ। तू पथिक जनों की युवती स्त्रियों पर निशाना बनने वाले पाँचों बाणों में एक अतिरिक्त बाण बन जाओ)।

पर यह वसन्तोत्सव सुख-समृद्धि, हर्ष-उल्लास, आमोद-प्रमोद की ही अभिव्यक्ति थी। समाज में कदाचिद कोई अवसाद का वातावरण होता, तो उस वर्ष यह उत्सव नहीं मनाया जाता था। इसीलिए तो, भ्रमवश शकुन्तला

के अकारण प्रत्याख्यान से उद्विग्न राजकुल वसन्तोत्सव की बेला में भी सूना-सूना लगा रहा है—

'किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते' (शाकु०, षष्ठ अङ्क)।

पहले ऐसा कभी-कभी होता था। लेकिन, आज तो मानो हम विषाद में ही जी रहे हैं। शायद इसीलिए सदा-सर्वदा के लिए हमने वसन्तोत्सव को भुला दिया है। आज भी प्रकृति अपना रंग बदली है, नया शृङ्गार करती है, सहाकार-मञ्जरी समय से ऋतुराज के आने का संकेत देती है, कोयल कूजती है, भौंरे गुंजार करते हैं, किंशुक की कलियाँ समय से चटकती हैं और वही है महुआ की मादक महक आज भी। लेकिन, हम उधर देख नहीं पाते या कि हमारी संवेदना इतनी भोथरी हो गई हैं कि कुछ पता ही नहीं चलता। आज, वसन्तोत्सव का पूर्व शालीन रूप चाहे जिस कारण से समाज की सामूहिक चेतना के रूप में अभिव्यक्ति न पाता हो किन्तु, 'मदनोत्सव' का विकृत अवशेष अब-भी होली के हुड़दंग के रूप में हर चत्वर-चौराहे और गलियारे में देखने को मिलता है। सामन्ती 'वसन्तोत्सव' न सही 'प्रजातन्त्र की होली' तो है! क्या यह कम सन्तोष की बात है?

कुछ-भी हो, पर इस बुन्देलखण्ड की मधुर वासन्ती उत्सववृत्ति कैसे मुरझा गई? जहाँ मधुमास के उन्मादी उत्सव की पुरातन समृद्ध परम्परा रही है। जो उन चन्देलों की धरती है, जिनके ऐश्वर्य पूर्ण उत्सवों में वसन्तोत्सव का विशिष्ट स्थान था। इस तथ्य की पुष्टि चन्देलवंशी नरेश मदनवर्मन्देव (सन् ११२८ से ११६५ ई० तक) के राजत्वकाल की एक घटना से होती है। जिन मण्डन के 'कुमार पाल प्रवन्ध' के अनुसार गुजरात के राजा सिद्धराज ने चन्देलवंशी नरेश मदनवर्मन्देव की अतिशय ख्याति सुनी। वस्तुस्थिति जानने के लिए सिद्धराज ने अपना एक विश्वस्त और सुयोग्य मन्त्री भेजा। वह मन्त्री छः माह तक मदनवर्मा के राज्य में घूमफिर कर जानकारी लेने के बाद लौट कर सिद्धराज के पास पहुँचा और उससे निवेदन किया कि— हम लोग वहाँ वसन्तोत्सव के समय पहुँचे। जहाँ उस समय वसन्त और आन्दोलक आदि रागों से गीत गाए जा रहे थे। अनुपम शृंगार में सजी-धजी अंगनाएँ घूम रहीं थीं। लाखों आकर्षक युवक आमोद-प्रमोद में मस्त थे। प्रत्येक मार्ग पर (यक्षकर्दम) कपूर, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन आदि महा सुगन्धित द्रव्यों का छिड़काव किया जा रहा था। प्रत्येक भवन में संगीत का आयोजन हो रहा था। हर देवालय में सविधि विशाल पूजन हो रहा था। घर-घर में सुन्दर पकवान बन रहे थे। राजा के घुड़सवार चारों तरफ घूम-

घूम कर लोगों को पान का बीड़ा दे रहे थे। और कपूर के चूर्ण से धूलिपर्वोत्सव मनाया जा रहा था—

'सभायां वैदेशिकेन भट्टेन भणितम्, अहो! सिद्धनृपतेः सभा मदनवर्मण इव मनोविस्मय-जननीति। राज्ञा पृष्टः, कोसौ मदनवर्मा नृपः? भट्टः प्राह, देव! पूर्वस्यां महोबक नाम पत्तनम्, तत्र राजश्रीमदनवर्मा प्राज्ञस्त्यागी भोगी धर्मी नयी च। तस्य च राज्ञः पुरं सहस्रशो दृष्टमपि वर्णयितुं न शक्नोति कोऽपि। यदि मम वचोविश्वासो न स्यात्, तदा कोऽपि विदुरो मन्त्री प्रेष्येत, स च विलोक्य राज्ञे विज्ञपयति इति श्रुत्या मन्त्रिणं प्राहिणोत्। सह भट्टेन षण्मासान् यावद्विलोक्य पश्चादायातेन मन्त्रिणा विज्ञप्तम्—श्रीसिद्धभूप, वयमितः प्रहितास्तत्र वसन्तोत्सवे प्राप्ताः। तत्र च वसन्तोत्सवे गीयन्ते वसन्तान्दोलकादिरागैर्गीतानि। भ्रमन्ति च दिव्यशृङ्गारा नार्यः। मकरध्वजभ्रान्तिकारिणो विलसन्ति लक्षशो युवानः। क्रियन्ते प्रतिरथ्यं छण्टनकानि यक्षकर्दमैः। प्रासादे प्रासादे संगीतकानि। देवे-देवे महापूजाः। प्रतिगृहं सारा भोजनव्यापाराः। राज्ञः सत्रागारे तु कूरावस्रावणानि मुत्कलानि न मुच्यन्ते, किन्तु गर्तायां निक्षिप्यन्ते, यदि मुच्यन्ते तदा सघण्टो हस्ती निमज्जति राज्ञोऽश्ववाराः परितः पुरं भ्रमन्तो बीटकानि ददते लोकाय। कर्पूरचूर्णधूलिपर्वोत्सवः।'

इस सन्दर्भ से बुन्देलखण्ड में धूम-धाम से मनाए जाने वाले मध्यकालीन वसन्तोत्सव पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ प्रयुक्त 'धूलिपर्वोत्सव' से यह संकेत मिलता है कि होलिकोत्सव तक वसन्त का उत्सव चलता होगा। वस्तुतः, होली का आमोद-प्रमोद वसन्तोत्सव का ही एक अंग था। माघशुक्ल पंचमी को वसन्तपंचमी कहा गया है। तब से इस उत्सव की शुरुआत होती थी। इसी के अन्तर्गत शिवरात्रि का उत्सव भी आयोजित होता था और उस वसन्तोत्सव का चरम उत्कर्ष धूलिपर्वोत्सव (होली) था। भले ही प्रमुखतः चैत्र और वैशाख, ये दो मास ही वसन्त ऋतु के भीतर परिगणित किए गए हों। किन्तु वसन्तदूती तो आम्रमंजरी और परभृतकण्ठ-काकली को ही माना गया है। यह भी प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वसन्तपंचमी के आस-पास ही बौरें दिखने लगती हैं। इसलिए, कुसुमाकर के पदार्पण का समय प्राचीनकाल से ही यही माना जाता रहा है। प्रत्येक ऋतु के पूर्व चालीस दिन का गर्भकाल होता है। संभवतः, इसी दृष्टि से पंचमी की तिथि को वसन्त की पंचमी यानि वसन्तर्तु का प्रारम्भ समझा गया हो। कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट है कि वसन्तपंचमी से लेकर होलिकोत्सव पर्यन्त इस बुन्देलखण्ड क्षेत्र में वसन्तोत्सव की बड़ी धूम रहती थी। तत्कालीन प्रशासकों की विशेष रुचि तो मुख्य कारण उत्सव की समधिक श्रीवृद्धि में थी ही, सामान्य जनमानस भी उसके प्रति उदासीन नहीं

था। सभी लोग भेद-भाव भुलाकर परस्पर प्रेम से उत्सव में शरीक होते थे और उस समय काव्यपाठ, संगीत, नृत्य, नाटक आदि लोकरुचि की चीजें आयोजित होती थीं। इसका प्रमाण है कालंजर के नरेश परमर्दिदेव और त्रैलोक्यवर्मनदेव के शासनकाल में उनके अमात्य वत्सराज द्वारा लिखे गए संस्कृत-रूपकों का ऐसे अवसरों पर विशेष रूप से अभिनीत किया जाना—

'अथ नीलकण्ठयात्रामहोत्सवसमागतैर्विदग्धसामाजिकैः कालञ्जरपतेर्महाराजश्रीपरमर्दिदेवस्यामात्येन कविना वत्सराजेन विरचितं कर्पूरचरिताभिधानं भाणमभिनेतुमादिष्टोऽस्मि।'

अमात्य वत्सराज-विरचित हास्यचूडामणिप्रहसन का अभिनय तो वसन्त ऋतु में ही परमर्दिदेव की आज्ञा से हुआ था। वासन्तिक विभात का वर्णन करते हुए सूत्रधार कहता है कि—'अये विभातैव शर्वरी। अहह! समय एव सर्वं शोभते। तथाहि—

नवविचकिलमालामांसलैर्यैस्तदानी
मदनमयमशेषं विश्वमेतद्व्यधायि।
चरमशिखरिशीर्षे सन्निविष्टास्त एते
दधति पलितभङ्गि भानवः श्वेतभानोः॥

आगे पात्रों द्वारा वर्णित वसन्त का दृश्य इस तथ्य की पुष्टि में और सहायक होता है—

'चेटः—(समन्तादवलोक्य) अहो, वसन्तावतारमण्डितस्य सश्रीकत्वमुद्यानस्य। अम्ब, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व—

मत्तो भुजङ्ग इव समक्षमेव यत् षट्पदश्चुम्बति एकमेकम्।
तेनैव एता हसन्ति वल्लीविलासिन्यः कुसुमोत्करैः॥

अपि च—

मत्ता रोलम्बविलासिन्यः गायन्ति गेयं मकरध्वजस्य।
तच्चैव चित्रानिलचालिता नृत्यन्ति वल्ल्यः लयक्रमेण॥'
—संस्कृच्छाया (हास्यचू०, पृ० १२३)।

ऐसे उल्लासभरे वातावरण में कोई विपण्ण हो, यह साथियों को नहीं सुहाता था—'तत्क एष वसन्तावतारप्रहर्षावसरे ते हृदयक्षोभः' (हा०, पृ० १३४)।

पर क्या, इस पुरातन वासन्त—वैभव की स्मृतिमात्र से आज हमारे 'हृदय का क्षोभ' मिटेगा!

—संस्कृत विभाग, महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

बुंदेली फाग का उद्भव और विकास

डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

•

बुंदेली फागकाव्य की लोकप्रियता निर्विवाद है, लेकिन न तो उसके स्वरूप का निर्धारण ठीक से हुआ है और न उसके उद्भव तथा विकास की रेखाएं स्पष्ट हुई हैं। पं० श्यामसुन्दर बादल के ग्रंथ 'बुंदेली का फाग-साहित्य' में सर्वेक्षण और संकलन का कार्य उपयोगी बन पड़ा है, जैसा कि प्रारम्भिक शोध में अधिकतर होता है और यही उसकी सिद्धि समझी जाना चाहिए। फाग-संकलनों की भूमिकाओं और अन्य प्रच्छन्न प्रयत्नों में भी गम्भीर अध्ययन का पूर्ण अभाव है। ईसुरी और गंगाधर व्यास पर लिखे शोधप्रबंधों में शोधकर्ताओं का ध्यान इस ओर नहीं गया है। असल में लोककाव्य का समीक्षक अभी तक एक गहरी धुंध में डूबा हुआ है, उसे जाने या अजाने यह भ्रान्ति घेरे रहती है कि लोकगीतों की समीक्षा साहित्यिक आधारों पर सम्भव नहीं है। उसकी यह झिझक शायद इसलिए है कि वह लोकगीत को साहित्य का अंग नहीं मानता। बादल जी ने भी अपने दृष्टिकोण को बिल्कुल साफ शब्दों में प्रकट कर दिया है—'लोकगीतों के अंतर्गत परिगणित होने के कारण फाग-साहित्य पर साहित्यिक दृष्टि से विवेचन हो सकने की कोई संभावना ही नहीं कर सकता, क्योंकि लोकगीतों में साधारण जनता की सीधी-सीधी अनलंकृत भाषा की पुनरावृत्ति शैली में मनोभावों की सरस अभिव्यक्ति हुई है...।'[1] इसी संकोच या आग्रह के कारण वे अपने विवेचन की परिधि में केवल चौकड़िया आदि नवीन फागकाव्य को स्थान दे सके, और इस तरह ईसुरी के पहले की प्राचीन फागगीतों की दीर्घ परम्परा उससे बहिष्कृत कर दी गई। जब तक फागकाव्य

---

१. बुन्देली का फाग-साहित्य, पृ० १३५।

की उत्पत्ति से लेकर अब तक की सम्पूर्ण धारा को ध्यान में नहीं रखा जाता, तब तक कोई भी निर्णय लेना उचित नहीं है।

प्राचीन रूप की खोज

फाग के स्वरूप की खोज के स्थान पर बादल जी ने वसंतोत्सव के इतिहास की पैमाइश की है। अपनी पुस्तक के दूसरे अध्याय में उन्होंने पहले फाग शब्द की निरुक्ति बताई है और फिर वसंतोत्सव की चर्चा करते हुए केवल यह निर्णय लिया है कि 'बुंदेली फाग-गीत बुंदेलखण्ड जनपद के लोकगीत हैं, जो वसंतोत्सव, होलिकोत्सव, फागोत्सव या रंगोत्सव पर गाये जाते हैं।'[२] पहले व्युत्पत्तिपरक पक्ष पर विचार किया। बादल जी के अनुसार संस्कृत की फल धातु से फल्गु शब्द बना है और वह रूपान्तरित होता हुआ फल्गु>फग्गु>फागु>फाग बन गया है।[३]

डा० भोगीलाल सांडेसरा ने संस्कृत फला से व्युत्पत्ति मानी है—फला>प्रा० फग्गु>फागु[४] और कांतिलाल व्यास ने संस्कृत फाल्गुन से—फाल्गुन>अ० फग्गु>फागु।[५] देशी-नाममाला में इसे वसन्तोत्सव कहा गया है—'फग्गू महुच्छणे'। इसी के आधार पर संस्कृत फल्गु से इसकी उत्पत्ति मानी गई है—फल्गु>प्रा० फग्गु (या देश्य फग्गू)>जू० गु० फागु>फाग।[६] इनमें एक तथ्य स्पष्ट है कि फाग शब्द चाहे फल या फला और चाहे फाल्गुन या फल्गु का रूपान्तरण हो, पर प्राकृत फग्गु सभी रूपों में मिलता है और इसी से जूनी गुजराती या राजस्थानी फागु तथा बुंदेली फाग बना है। प्राकृत फग्गु या देश्य फग्गू का अर्थ 'वसन्त का उत्सव' है,[७] इस आधार पर फागु और फाग का अर्थ भी वसंतोत्सव रहा होगा। बुंदेलखण्ड में आज भी 'फाग' का प्रयोग रंगोत्सव के लिए होता है। 'फाग खेलना' रंग डालने के लिए एक प्रचलित मुहावरा है। यहाँ तक कि विवाहों में भी रंग डालने को 'फाग होना' कहते हैं। इससे सिद्ध है कि बुंदेली का 'फाग' शब्द फागोत्सव का पूरा अर्थ देता था और यह प्राकृत के फग्गु का ही रूपान्तरण है।

फाग-गीत इसी रंगोत्सव या वसंतोत्सव में गाये जाने वाले गीत या लोक-

२. बुन्देली का फाग-साहित्य, पृ० ३०।
३. वही, पृ० १५।
४. प्राचीन फागु संग्रह, पृ० ५३।
५. वसन्त विलास, इण्ट्रोडक्शन, पृ० ३८
६. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० १६६।
७. पाइअसद्दमहण्णवो, पृ० ७६७।

गीत हैं, जिनमें इस उत्सव में होने वाली विभिन्न क्रीड़ाओं और उनके परिवेश का चित्रण स्वाभाविक है। पर मुख्य प्रश्न यह है कि उनका प्राचीन रूप क्या था। उसका निश्चय प्राचीन फाग कृतियों के आधार पर किया जा सकता है, परन्तु बुंदेली की प्राचीन फाग रचनाएं उपलब्ध न होने के कारण एक कठिनाई खड़ी हो गई है। राजस्थानी और जूनी गुजराती में लगभग सौ फागु कृतियाँ मिली हैं, जो आदि और मध्यकाल में एक विशिष्ट काव्यरूप 'फागु' एवं 'फागुबंध' के अस्तित्व को बनाये रखती हैं। इन फागु रचनाओं के संबंध में विद्वानों के मतों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) फागु कृतियों को गेय रूपक मानने वालों में अक्षय चन्द्र शर्मा,[८] डा० हरीश[९] एवं डा० हीरालाल माहेश्वरी प्रमुख हैं।

(२) यमकबद्ध अनुप्रासमय फागबंध वाले काव्य की मान्यता डा० अम्बालाल प्रेमानन्द[१०] शाह ने स्थापित की है।

(३) डा० हरीश फागु का संबन्ध रास के मसृण रूप से जोड़ते हैं।[११]

(४) डा० मंजुलाल र० मजमुदार के अनुसार फाग मूल में लोकसाहित्य का गीत स्वरूप है।[१२]

उपर्युक्त मतों में अधिकांश विद्वान फागु को गेय रूपक मानने के पक्ष में हैं, परन्तु उनकी यह धारणा परिनिष्ठित फागु कृतियों पर आधृत रही है। फागु को यमकबद्ध अनुप्रासमय काव्य कहना उचित नहीं है, क्योंकि इस दृष्टि से अनेक सहज मसृण फागुकृतियाँ फागु की सीमा से बाहर हो जाएंगीं। इसी प्रकार-नृत्य-गीत-परक रास के एक भेद नाट्य रास और गेय रूपक में कोई अन्तर नहीं किया जा सकता। दोनों मे अभिनय का तत्व निहित होता है। फागु के मूल रूप में लोक साहित्य का गीत स्वरूप मानना औचित्य रखता है। वास्तव में फागु की दो परम्पराएं समानान्तर रूप में प्रवहमान रही हैं—एक मौखिक परम्परा, जो लोकगीत-रूप में जीवित रही है और दूसरी लिखित परम्परा, जिसकी कृतियों को लोककाव्य में परिगणित नहीं किया जाता। लोकगीत या लोक काव्य को ठीक से न समझने पर कई भ्रान्तियाँ जन्मती हैं और भ्रामकता में जो निष्कर्ष लिये जाते हैं, वे भ्रामक होने के कारण अनिश्चय और द्विविधा की स्थितियाँ निर्मित करते रहते हैं।

८. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९, अङ्क १, सं० २०११, पृ० २५।
९. आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ० १४०।
१०. जैन-सत्य-प्रकाश, वर्ष १२, अङ्क ५-६, पृ० १६५।
११. आदि कालीन हिन्दी साहित्य शोध, पृ० १४०।
१२. गुजराती साहित्यनां स्वरूपो, पृ० २०१।

उदाहरणार्थ, कुछ विद्वानों का कथन है कि अनेक फागु कृतियों में काव्य-पक्ष की अवहेलना की गई है या काव्य-दृष्टि से हेय है अथवा उनमें मौलिकता का पूर्ण अभाव है।[13] यह सही है, लेकिन फागु के मूल रूप को ध्यान में रखने से उनका यह आरोप कुछ ढीला पड़ जाता। लिखित परम्परा की फागुकृतियों में से जो लोक द्वारा गृहीत हो जाती हैं, वे लोक-काव्य के अन्तर्गत आ जाती हैं और शेष उसकी सीमा से बाहर हो जाती हैं, क्योंकि उनमें लोककृति होने का वैशिष्ट्य नहीं है। मैं यहाँ अधिक विवेचन में नहीं पड़ना चाहता, पर केवल इतना कहना उचित मानता हूँ कि फागु का काव्यरूप लोकगीत का ही था, जो नृत्य-गीत-परक था और नृत्य-गीत-परक रास के काव्यरूप से मिलता-जुलता था। रास-काल में अभिनय का तत्व समाहित हो जाने से उसमें अभिनेयता या रूपकत्व आ गया, जो धीरे-धीरे मुरझाता गया। इस कारण आज का अवशिष्ट फागु केवल नृत्य-गीत-परक रह गया और नृत्य की सर्वत्र सुविधा न होने से केवल गीत रूप में अपनी सत्ता बनाये हुए है।

जहाँ तक बुंदेली फागों का प्रश्न है, लगभग यही विकास-रेखा लागू होती है। यद्यपि बुंदेली की प्राचीन फागकृतियाँ नष्ट हो गई हैं अथवा अभी तक उपलब्ध नहीं हैं, तथापि मौखिक रूप में अवशिष्ट कथात्मक या आख्यानक फाग गीतों से यह अनुमान किया जा सकता है कि उनकी रचना अवश्य हुई थी। मुझे जो हस्तलिखित संकलन मिले हैं, उनसे यह भ्रम टूट जाता है कि उनकी लिखित परम्परा नहीं थी। वस्तुतः बुंदेली फाग लोकगीत के रूप में ही था और उनमें नृत्य और संगीत का मेल था। चंदेल नरेश कीर्तिवर्मन् (१०६०-११०० ई०) के सभासद कृष्ण मिश्र के नाटक प्रबोधचन्द्रोदय से पता चलता है कि ग्यारहवीं शती में यहाँ अभिनय और नृत्य उत्कर्ष पर थे। प्रबोधचन्द्रोदय कीर्तिवर्मन के समक्ष राज्य के कलाकारों द्वारा अभिनीत किया गया था और उसमें संगीत और नृत्य का प्रमुख योग था।[14] चंदेलों के राज्य में वसन्तोत्सव या रंगोत्सव को सर्वाधिक महत्व मिला था, जिसकी साक्ष्य गुजरात के सिद्धराज जयसिंह और चंदेलनरेश मदनवर्मन् (११२९-६५ ई०) के बीच घटित उस ऐतिहासिक घटना से मिलती है जिसमें युद्ध के भूखे सिद्धराज

---

१३. हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, डा० गोविन्द रजनीश, पृ० २९-३०।

१४. प्रबोधचन्द्रोदयम् (निर्णय सागर प्रेस), पृ० १३, १४, १२३, १५५, १६०।

ने मदनवर्मन् के वसन्तोत्सव के विनोद से प्रभावित होकर संधि कर ली थी।[15] चंदेलनरेश परमर्दिदेव कालीन (११६५-१२०३ ई०) जगनिककृत आल्हखण्ड में रंग-केशर के पिचक्का (पिचकारियों) का वर्णन भी रंगोत्सव की महत्ता की पुष्टि करता है, राग-रागनी (संगीत) और नाच (नृत्य) के तो कई प्रसंग कथानक में मिलते हैं। परमाल रासो में नृत्य और रास दोंनो के संकेत हैं।[16] इससे सिद्ध है कि रंगोत्सव में गाये जाने वाले फाग लोकगीत के रूप में प्रचलित थे। यदि १०वीं शती में लोकगीतों की परम्परा न चली होती, तो १२वीं शती में आल्हखण्ड जैसे लोकमहाकाव्य की रचना कैसे संभव होती। दूसरे, संस्कृत नाटक प्रबोधचंद्रोदय (११वीं शती) में प्राकृत के अधिक प्रयोग से ऐसा आभासित होता है कि इस जनपद में फाग की यह परम्परा प्राकृत से आई है, अपभ्रंश से नहीं। तीसरे प्राचीन फाग लोकगीतों में संगीत और नृत्य को प्रमुख स्थान प्राप्त था। चौथे, १२वीं शती के लोकमहाकाव्य आल्हखण्ड से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में आख्यानक फाग-गीतों की रचना अवश्य हुई होगी और उनका रूप नृत्य-गीत-परक रास जैसा रहा होगा। इस प्रकार सबसे पहले लोकगीत के रूप में फाग का जन्म हुआ और उसकी मौखिक परम्परा १०वीं शती से चली, तथा बाद में १२वीं शती से आख्यानक फाग-गीतों की लिखित परम्परा प्रारम्भ हुई, किन्तु सारी रचनाएँ विदेशी आक्रमणों के कारण नष्ट होने से उसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती।

आविर्भाव और विकास

बादल जी ने अपने ग्रंथ में विचित्र निष्कर्ष निकाले हैं, निकाले क्या हैं, अनुमति कर लिए हैं और उनके लिए कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किए। पहले उन्हें ही कसौटी पर रखना आवश्यक है। उन्होंने लिखा है कि बुन्देली का पद-शैली का फाग साहित्य महाकवि जयदेव के गीतों पर आधारित है।[17] आगे उन्होंने फिर निर्णय लिया है कि विद्यापति और चण्डीदास की रचनाओं पर बुन्देली का फाग-साहित्य आधारित है।[18] जहाँ तक पद-शैली के फाग गीतों की समस्या है, यह निश्चित है कि हिन्दी के पदों या पद-शैली के गीतों

---

१५. आर्क्यॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग २, पृ० ४५४।

१६. परमाल रासो, ७-७६, १०-७३५।

१७. बुंदेली का फाग-साहित्य, पृ० ३७।

१८. वही, पृ० ३८।

के लोक तक पहुँचने पर ही उनका अनुसरण हुआ होगा। मध्यदेश और बुन्देलखण्ड में पद-शैली का विकास पूर्व से प्रभावित नहीं था, वरन ग्वालियर के कवि विष्णुदास विष्णुपदों से (अर्थात् तोमरकालीन ग्वालियर से) हुआ था।[१९] भक्तकवि सूरदास भी इसी क्षेत्र की पद-परम्परा लेकर ब्रज में गए थे और तुलसी में भी इसी का ऋण है। सूर और तुलसी के पदों की धरोहर जब लोक को बनी होगी, तब पद-शैली की फागें रची गई होंगी। इसीलिए तुलसी, सूर और कबीर की छाप के अनेक पद और भजन बुन्देली में मिलते है। अतएव बुन्देली की पदशैली की फागें गीतगोविन्द पर आधृत बताना समुचित नहीं है और समस्त फाग काव्य को विद्यापति और चण्डीदास के गीतों पर आधारित मान लेना कितना औचित्य रखता है। तीसरा निर्णय भी चिन्त्य है। उन्होंने लिखा है कि फाग-गीतों पर सबसे अधिक प्रभाव मीराबाई का दिखाई पड़ता है।[२०] वह भी राजस्थानी फागों पर नहीं, बुन्देली फागों पर। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने मीरा की चार पंक्तियाँ दी हैं, जिनमें पहली है—'रंगभरी रंगभरी रंग सो भरी री, होरी आई प्यारी रंग सो भरी री।' इसी के वजन पर बुन्देली पंक्ति दी है—'दूर बौ दूर बौ दूर बौ रे, बाबा जुनरिया दूर बौ रे।' क्या यह वजन लोकगीत का नहीं है, जो मीरा ने स्वयं अपने गीत में अपना लिया है? एक तरफ उन्होंने विद्यापति, चण्डीदास आदि के गीतों को लोकगीतों का परिष्कृत या साहित्यिक रूप ही माना है और दूसरी तरफ उन परिष्कृत गीतों को बुन्देली फागों के मूल आधार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कभी-कभी यह संभव भी है, पर फिर तो मूल आधार वे प्राचीन लोकगीत ही होंगे। विभिन्न शैलियों की फागों के आधारों की खोज उनकी विकासमूलक स्थितियों के साथ की जाएगी, लेकिन इतना निश्चित है कि उपर्युक्त निर्णय उचित ठहराने में कोई प्रामाणिकता नहीं ठहर पाती।

बुन्देली फागों के उद्भव-काल का निर्धारण भी भ्रामक है। बादल जी का मत है कि 'वसंतोत्सव के लोकगीत भी तभी से प्रचलित हुए होंगे, जबसे वसंतोत्सव की समाज में प्रतिष्ठा हुई होगी।'[२१] एवं 'जबसे बोलचाल के विभिन्न प्रादेशिक अपभ्रंशों में नव्य भारतीय भाषाएं तथा बोलियां उत्पन्न

१९. बुंदेलखण्ड का मध्ययुगीन काव्य : एक ऐतिहासिक अनुशीलन (लेखक का शोध प्रबंध) पृ० ५७१।

२०. बुन्देली का फाग-साहित्य, पृ० ५७।

२१. वही, पृ० ३५।

हुई होंगी, तभी से उनमें लोकगीतों की रचना का भी आरम्भ हो गया होगा।'[२२] दोनों अनुमान सहजलब्ध हैं और एक दूसरे के पूरक, परन्तु उनसे मूल समस्या नहीं सुलझती। उसके समाधान में सबसे बड़ी बाधा यह है कि आदिकालीन फागों की लिखित परम्परा की कोई भी कृति उपलब्ध नहीं है। वैसे अभी तक प्राप्त फागों में सबसे प्राचीन हैं—साखी की फागें (बुन्देली में सखयाऊ), जिनमें दुमदार दोहों (या एक दोहे के साथ अन्त में एक कड़ी) का प्रयोग हुआ है। राजस्थानी और जूनी गुजराती में सादे दोहों या अन्तर्यमक प्रधान दोहों का उपयोग हुआ है। बुन्देली फाग में अन्तर्यमक प्रधान दोहे नहीं मिलते, जबकि राजस्थानी या जूनी गुजराती में उन्हें फाग छंद की संज्ञा प्राप्त हो गई है। दोहा अपभ्रंश का लाड़ला छंद है और वह शृंगार में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर चुका है। दोहे छंद का उत्कर्ष ९वीं-१०वीं शती में हुआ था, पर दुमदार दोहों की उत्पत्ति और विकास-यात्रा की खोज जरूरी है। सूरदास और नंददास में दोहों के अन्त में दस मात्राओं की एक पंक्ति जोड़ दी गई है। धमार गीतों में भी दोहे के चरणों का प्रयोग हुआ है। धमार गीत होली के गीत हैं, जो धमार शैली में गाये जाते हैं। सूर, नंददास और गोविन्ददास ने इस शैली के गीतों की रचना की थी। अतएव यह निश्चित है कि दुमदार दोहों का प्रयोग २५वीं शती के अन्तिम चरण में होता था, परन्तु कृष्णकाव्य के कवियों ने लोक-छन्दों से प्रेरणा पाकर ही ऐसे प्रयोग किए थे। बुंदेली के दिवारी-गीतों में भी दोहे का ऐसा ही बंधान है। संभव है कि आभीरों से दोहे का सम्बन्ध रहा हो, क्योंकि आज भी अहीरों का प्रिय छंद दोहा ही है। छंदशास्त्र में ११ मात्राओं के चरण वाला आभीर या अहीर छंद मिलता है,[२३] इसका विकास भी दोहे के रूप में संभव है। तात्पर्य यह है कि दुमदार दोहों की संगीतमय रचना १५वीं शती के पूर्व की है। गोपगिरि (ग्वालियर) क्षेत्र में आभीरों का निवास था, उन्हीं से कृष्ण काव्य के कवियों ने दुम या कड़ी जोड़ना ग्रहण किया होगा। जब तक प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती, कुछ कहना ठीक नहीं है। केवल इतना कहा जा सकता है कि इन फागों की रचना १५वीं शती के पूर्व और १०वीं शती के उपरान्त हुई होगी। इस संदर्भ में 'साखी' जैसे पुराने शब्द की यात्रा को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। मैं यह भी संकेत कर चुका हूँ कि १२वीं शती के आल्हखण्ड जैसे लोक महाकाव्य से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता

२२. बुन्देली का फाग-साहित्य, पृ० ३७-३८।

२३. छन्द प्रभाकर, पृ० ३४।

है कि उस समय मुक्तक फागकाव्य और आख्यानक फागगीत दोनों का विकास उत्कर्ष पर रहा होगा।

मुक्तक फाग के विकास का प्रथम चरण दोहा छंद पर आधारित रहा है। दुमदार दोहों के बाद दोहे को केन्द्र में रखकर अनेक तरह की फागों की रचना की गई। डफ या डहका की फागें दोहे में लटकनियाँ लगाकर एक विशिष्ट गायन-शैली में ढाल दी गईं। चूंकि ये फागें लोकवाद्य डफ या ढाक या चंग के साथ गाई जाती है, इसलिए उन्हीं के नाम पर उनका प्रचलन हो गया। दोहे के आधार पर ही 'राई' गीत का विकास हुआ है। पहले एक टेक और फिर दोहा तथा इसी की आवृत्ति। कहीं-कहीं केवल टेक के प्रथम अर्द्धांश को दुहरा कर शेष अंश दूसरे चरण में गाने का रिवाज है और उसी को राई कहा जाता है। इसी गीत के साथ बेड़िनी नृत्य करती है। इस नृत्य-गीत के वाद्य भी महत्व रखते हैं, खास तौर से मृदंग या ढोलक, जिसका वादन नृत्य का प्रतियोगी होता है।

विकास का दूसरा चरण १५वी शती से प्रारम्भ होता है। ग्वालियर में संगीत के उत्कर्ष से फाग में नई रवानी और नूतन ध्वन्यात्मकता आती है। शास्त्रीय पद्धति की पद-शैली की फाग का उदय होता है, जो रागबद्ध माधुर्य से रसिकों को रससिक्त करती है। होली और धमार की लयकारियाँ प्रसिद्ध रही है। बुन्देलखण्ड की रियासितों के दरबारों में इन फागों का बोलबाला रहा, पर लोक में उनका प्रचलन न हो सका। इतना अवश्य है कि उन्हें देशी संगीत और लोकसंगीत में डालकर और पुराने लोकगीत की शैली में सरल-सहज बनाकर अपना लिया गया। उदाहरण के लिए एक फाग बुंदेलखण्डी लोकगीत में दी गई है,[२४] जिसमें अन्तिम तीन पंक्तियों में 'जो सुन पाहें' की आवृत्ति से उसे लोकशैली में ढालने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वही फाग बादल जी की पुस्तक में और बदल गई है और उसकी दूसरी-तीसरी पंक्तियों में प्रश्नोत्तर शैली हो गई है, जो कि लोकगीत के अधिक निकट है।

इसी समय ब्रज के **रसिया-गीतों** का आगमन बुंदेलखण्ड में हुआ। १६वीं-१७वीं शती में ब्रज और बुंदेलखण्ड के सम्पर्क और उनकी संस्कृति के आदान-प्रदान के कई उदाहरण इतिहास में खोजे जा सकते हैं। मैं समझता हूँ कि ओरछा नरेश मधुकरशाह के राज्यकाल अर्थात् १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में परस्परिक सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ और उन्हीं के फल स्वरूप रसिया जैसे

---

२४. बुन्देलखण्डी लोकगीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, १९५९, पृ०१२९।

विशिष्ट होली या फागगीतों का प्रभाव यहाँ की फाग गायकी पर पड़ा। बुन्देली ने उन्हें आत्मसात तो किया, पर काफी परिवर्तन के साथ। उनकी गायन-शैली और लय बुन्देली लोकगीत बिलवारी की तरह है। बिलवारी के साथ जुड़ने वाली लटकनियाँ 'अरे हाँ' या 'अरे हाँ हाँ री' का प्रयोग कर उसी पुराने लोकगीत की धुन में अन्य फागें भी बनीं, जो अधिकांशतः भक्ति-परक थीं और कृष्ण, शंकर और राम आदि देवों की भक्ति से संप्रेरित थीं। बिलवारी की गायकी का असर इतना व्यापक हुआ कि झूला या झूलना की फागों का आविर्भाव हुआ। ये एक तरफ प्राचीन दुमदार दोहों की परम्परा से जुड़ी है क्योंकि दोहे के समचरण पर आधारित हैं और केवल डेढ़ पंक्ति की हैं, दूसरी तरह बिलवारी से क्योंकि बिलवारी गीत भी दोहे की उस परम्परा का ऋणी है।

'लाल' से जुड़ने वाली **'लाल फाग'** का अवतरण भी पुराना और १७वीं शती का है। 'लाल' फाग की हर पंक्ति के अन्त में लगकर एक अनोखा लावण्य भर देता है। उसमें होली के लाल रंग की लालिमा, नायक के प्रेममय हृदय की लालसा, लाला-भौजी के सम्बन्धों का लालित्य और लाल माणिक का लावण्य सब कुछ मिलकर एक हो गया है। 'लाल' शब्द ब्रजी का है या बुन्देली का, यह तो खोज की बात है, पर यह निश्चित है कि वह कृष्ण से अधिक जुड़ा रहा और भक्तिकाल से होता हुआ रीतिकाल तक आते-आते अपनी लम्बी यात्रा में अनहोने कमाल कर गया। बुन्देली फाग की गायन-शैली में एक मोड़ ला गया। पद-शैली की शास्त्रीय फाग लोकसंगीत में एक दूसरी दिशा को मुड़ गई। इस तरह 'लाल फाग' का आविर्भाव पद-शैली की फाग से हुआ वह पूरे मध्य युग में छाई रही, परन्तु १९वीं शती के अंतिम चरण में चौकड़िया से मेल कर फिर बदल गई।

छंदयाऊ फाग के उद्भव की खोज इसलिए कठिन है कि उसकी लिखित परम्परा की फागें नष्ट हो गई हैं। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है कि आख्यानक और छंदयाऊ फागों की रचना १२-१३वीं शती में विपुल रूप में हुई होगी। राजस्थानी और गुजराती फागुओं में दोहा, अढ़ैया, अन्दोला, रास आदि छन्दों की प्रधानता मिलती है। १५वीं शती में ग्वालियर क्षेत्र को केन्द्र बनाकर दोहा के साथ रोला छन्द जोड़कर नई प्रकार की फाग आई। १७-१८वी शतो में रीतिकाव्य-काल में छन्दपरक मुक्तकों का साम्राज्य रहा, इसलिए छन्दयाऊ फाग को भी गायकी के अनुरूप छन्द चुनने का अवसर मिला। दूसरी ओर लावनी का विकास १६वीं शती में हो चुका था, जिसने फागकारों को जल्दी आकर्षित किया। लावनी की रंगतों और उनके तीव

आरोह-अवरोह वाले स्वर-संधान ने फाग-गायकी पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। फलस्वरूप लाउनी की फागों का विकास हुआ। दोनों परम्पराएं चलती रहीं। १६वीं शती में चौकड़िया के लोकप्रिय होने पर उनमें चौकड़िया की कड़ियाँ टेक के रूप में रखी जाने लगीं, इससे एक नया रूप सामने आया जो आज तक अनुसरित हो रहा है।

बुन्देली लोकगायकी में लेद का आविष्कार एक ऐतिहासिक घटना है। दतियानरेश भवानी सिंह का राज्यकाल १८५७-१६०७ ई० ललित कलाओं के उत्कर्ष की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जाता है। उनके दरबार में कलाकारों का जमघट लगा रहता था। संगीत और नृत्य को विशिष्ट सम्मान प्राप्त था। ऐसे अनुकूल वातावरण में लेद गायकी फूटना स्वाभाविक था। लेद में ध्रुपद के स्वर की स्पष्टता, धमार की लयकारिता, ख्याल की कल्पनात्मकता, ठुमरी की चंचलता और दादरे की वक्रता का अद्भुत सामंजस्य रहता है। इस कारण लोकहृदय को तुरंत छू गई, लेकिन लोकसंगीत ने उसे दादरा-कहरवा तालों में ढाल कर अपनाया। लेद की विशेषता यह है कि वह अकेले नहीं गाई जाती। दूसरे वह वसंत-पंचमी से होली तक गायी जाती है, इसलिए वसंत, होली और नायक-नायिका-भेद से स्फुरित शृंगार उसका प्रमुख रस है। इन विशेषताओं के कारण फाग से उसका संबंध घनिष्ठ हो गया और लेद की फागों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार लेदगायकी पर आधारित फागें वीसवीं शती की देन हैं।

चौकड़िया और खड़ी फागों का जन्म उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में हुआ। लोककवि ईसुरी और गंगाधर व्यास ने स्वयं फागों की रचनाकर फागगायकी को नई दिशा प्रदान की। इनके गठन में क्रमशः २८ और ३० मात्राओं की पंक्तियों को लेकर अक्सर यह कहा जाता है कि उनका आधार सार या नरेन्द्र छंद है, लेकिन लोककवि अथवा लोकगायक छंद को सामने रखकर काव्य की रचना नहीं करता। बादल जी ने मराठी की साकी का मिलता-जुलता नमूना दिया है, ऐसे उदाहरण कन्नौजी और छत्तीसगढ़ी के होली गीतों में मिल जाते हैं :—

कन्नौजी—ताल वजाय भिम्म दहलानो, ताल वजाय भिम्म दहलानो हरे।
ताल बजाय भिम्म दहलानो वादर सो घहरानो।
फूलो अंग भओ जब दूनो तब कीचक घबड़ानो। टेक...[२५]

छत्तीसगढ़ी—बजै नगारा दसों जोड़ी, हाँ, राधाकिशन खेलें होरी
दूनो हाथ धरै पिचकारी, धरै पिचकारी धरै पिचकारी
रंग गुलाल सबै बोरी। टेक...

२५. कन्नौजी लोक साहित्य, डा० संतराम अनिल, १६७५, पृ० ८०।

दुधुवा दहिया बचै न पाइस, आहू म रंग दिहिन घोरी। टेक...
सब सखियाँ मिल पकड़ किस्न ला ओही रंग म दै बोरी। टेक...
तब राधा मुस्काय कहिन हाँ अउ खेलिहौ तुम होरी। टेक....[२६]

अधिक दूर जाने की बात नहीं, बुन्देली की पुरानी 'लाल फागों' में ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। उनमें से एक प्रस्तुत है—

दोई नैनों के मारे हमारे जोगी भये घरबारे लाल।
जोगी भये घरबारे हमारे जोगी भये पिय प्यारे लाल।
अंग भभूत बगल मृगछाला सीस जटा लपटाने, हमारे...।
हाथ लँय कुण्डी बगल लँय सोटा घर घर अलख जगावें, हमारे....।

और भी फागें उद्धृत की जा सकती हैं, पर मैंने उदाहरणों की भरती से बचने के लिए भरसक कोशिश की है। फिर भी यदि फागों के रचना-काल के संबंध में कोई यह शंका करें कि ये फागें ईसुरी के पहले की नहीं हैं, तो उनके लिए दमोह जिले के गढोला निवासी भावसिंह लोधी की एक रचना यहाँ दी जा रही है, जिसमें १८५४ ई० के अकाल का वर्णन किया गया है—

महुवा भलो राम को प्यारो।
गेहूँ पिसी दगा सब दै गये महुँअन देस समारो।
और नाज मोटे में उपजें आपन बसत पहारो।...आदि।

इन आधारों पर मेरी यही मान्यता है कि चौकड़िया और खड़ी फागों का उद्भव प्राचीन 'लाल फागों' से हुआ, है, सूर, तुलसी, मीरा, कायम आदि के पदों से नहीं। यह बात अलग है कि 'लाल फागों' का आधार पदशैली की फागें हैं और पदशैली की फागें पुराने पदों का लोकगायकी में रूपान्तरण हैं।

आख्यानक फागों के उद्भव का संकेत पहले किया जा चुका है। मध्यकाल की फाग कृतियाँ भी उपलब्ध नहीं है, केवल १६ वीं शती के अंतिम चरण से अब तक की सामग्री के अध्ययन से ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अभी तक कथाओं का वर्णन छंदयाऊ भागों में ही हुआ है, अन्य शैलियों की फागों में नहीं। लेकिन एक वर्ष पूर्व एक कवि ने चौकड़िया फाग में एक खण्ड काव्य की रचना की है। इन फागों में या तो पौराणिक कथाओं का आधार लेकर कथा योजना की गई है या ऐतिहासिक नायकों की ख्यात घटनाओं की पटभूमि पर। शैली इतिवृत्तात्मक है, पर संवादात्मक और प्रश्नोत्तर शैलियों से सहज नाटकीयता उत्पन्न की गई है। सहज और निश्छल भावुकता के

२६. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन, डा० शकुन्तला वर्मा, १६७१, पृ० १५५।

साथ कहीं-कहीं चमत्कार का विधान भी है। जहाँ तक काव्य रूप का प्रश्न है, सभी आख्यानक फागें दीर्घ गीत ही हैं, नई रचनाओं का प्रबंधात्मक स्वरूप उनके प्रकाश में आने पर ही निश्चित किया जा सकता है।

फागों की प्रमुख प्रवृत्तियों के अनुशीलन में तो एक पूरा ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है और उनके अभिनय और मूल तत्वों के विवेचन के लिए भी यहाँ अवकाश नहीं है, पर कुछ प्रमुख तथ्यों को इंगित किये बिना यह निबंध अपूर्ण ही रहेगा। एक तो यह है कि बुन्देली फागों का अनुशीलन अभी तक ठीक से नहीं हुआ है। उनके काव्यत्व और अभिव्यंजन-शिल्प को साहित्यिक दृष्टि से परखने की आवश्यकता है। दूसरे, फागकाव्य का इतिहास-लेखन भी महत्व-पूर्ण है। तीसरे बुन्देली और अन्य बोलियों के फागकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन भी उपयोगी है। मैं समझता हूँ कि सभी दृष्टियों से सम्यक परीक्षण के बाद ही कोई भी तटस्थ समीक्षक यह निर्णय ले सकता है कि हिन्दी के समस्त फागकाव्य में बुन्देली फागकाव्य का अपना एक निजी महत्वपूर्ण अस्तित्व है। इसी विश्वासपूर्ण संभावित के साथ मैं अपनी यात्रा के एक पड़ाव पर अपनी पहली कथा की समाप्ति कर रहा हूँ, आशा है, कि मेरे हमसफर इस रास्ते की तरफ कदम बढ़ायेंगे।

ईसुरी पूर्व का प्राचीन फागकाव्य

डा० श्यामसुन्दर बादल

•

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ही नहीं अपितु पूरे राष्ट्र में प्रत्येक भाषा एवं क्षेत्रीय बोली में प्रत्येक अवसर पर पर्वों के गीत मिलते हैं और वे उसी अवसर और पर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं। बच्चा पैदा होने पर गए जाने वाले गीत सोहर एवं वसन्तोत्सव या फागोत्सव के गीत फाग-गीतों के नाम से ही प्रचलित हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं, जितने हमारे होलिकोत्सव के कार्य-कर्मों के विधान। हाँ, भाषा और बोलियों में उनके उद्भव और विकास के साथ ही इनका उद्भव और विकास होता रहा है। भाषा-विज्ञान-वेत्ताओं के मत से—"अपभ्रंश-भाषा ग्यारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक उत्तर-भारत एवं मध्यप्रदेश में जिस रूप में व्यवहृत हुई वही बुन्देली है।"

इसी बुन्देली भाषा के फाग-गीत चौकड़िया-फागों के सुप्रसिद्ध एवं लोक-प्रिय गीतकार 'ईसुरी' से भी सात-आठ सौ वर्ष पूर्व से ही गाए जाते रहे हैं। जाड़े के दिनों में ग्रामीण लोग कौंड़ों को घेर कर तापते हुए ढोलक और झाँझों के स्वरों के साथ-साथ फाग-गीतों को गा-गाकर जाड़े की लम्बी रातें सुख से काट लेते थे। आज भी कहीं-कहीं वह परम्परा प्रचलित है। जिस प्रकार चौकड़िया-फागों में वसन्तोत्सव के गीतों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों की सभी रसों से पूर्ण फागें मिलती हैं, उसी प्रकार प्राचीन फाग-गीतों में भी सभी प्रकार की फागें मिलती हैं।

पुरोहितों द्वारा बताए गए सुमुहूर्त में फाग-मण्डलियाँ होलिका-दहन के लिए अपने वाद्यों के साथ फाग-गीतों को गाती हुई निकलती हैं। ये फाग-गीत इस महोत्सव के मंगलाचरण से प्रतीत होते हैं। यथा—

गणेश वन्दना का फाग-गीत—

'अरे हाँ, देवा सेवा तुम्हारी ना जानों।
गन्नेशा ! गरीब-निवाज !! देवा सेवा तुमारी न जानों।
काहे के गनपति करौं, कहाँ देउँ पौढाय ॥ देवा०।
अरे हाँ, गोबर के गनपति करौं, औ पटा देउँ पौढ़ाय ॥ देवा०।
अरे हाँ, काहे के भोजन करौं, कहाँ देउँ अँचवाय ॥ देवा०।
अरे हाँ, दूध-भात भोजन करौ, औ गंगाजल अंचवाय ॥ देव०।

शंकर की वन्दना का फाग-गीत—

'कोउ ऐसो न जग में, होय, महादेव वरदानी।
चन्दन चाँवर बेला की पाती, अज्जा-धतूरे कौ फूल,
चढ़ायें जल-पाती। कोऊ०।
इत बहै गंगा, उत बहै जमुना, प्रागराज में तिरबेनी,
भागीरथ गंगा लै आए, तरन लागो संसार,
जटन में उरझानी। कोऊ०।

होलिका-दहन के समय पूर्व, उत्तर और पश्चिम की वायु बहे तो अच्छी मानी जाती है और दक्षिण की अनिष्टकर। यह ज्योतिष-शास्त्र-सम्मत भी है। यथा—

'पूर्वे वायुः होलिकायाः प्रजा-भूपालयोः सुखम्।
पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणो जायते ध्रुवम् ॥
पश्चिमे तृण-सम्पत्तिः उत्तरे धान्य-सम्भवः ॥'

दूसरे दिन प्रातः काल होलिका की विभूति (राख) माथे पर लगाने की भी शास्त्रीय परम्परा है, जो सुखद मानी गई है एवं उसी का विकृतरूप आज की धुरैंड़ी या कीच-गिलावे की फाग है। जैसी कि हेमाद्रि की उक्ति है :—

'प्रवृत्ते मधु मासे तु प्रतिपदि उदिते रवौ।
कृत्वा चावश्य कार्याणि संतर्ण्य पितृदेवताः।
वन्दयेद् होलिका भूति सर्व दुःखोप शान्तये ॥'

धुरैंडी और कीच गिलावे की फाग तो चैत्र-प्रतिपदा को दिन के पूर्वाह्न में होती है, एवं दिन के पराह्न में रंग-गुलाल की फाग होती है। द्वितीया को एवं कहीं पन्चमी को भी रंग-गुलाल की फाग होती है। इस अवसर का एक राजस्थानी फाग-गीत है :—

"होली आई रँगीली रुत ल्याई,
रमण न चालौ खेलन न चालौ री।

फागुन की रुत आई, मिलजुल कै खेलो भाई,
बाजे रँगीली ढप, बाजे रसीली ढप, बाजे जी।
भर पिचकारी मारी, भींज गई मेरी साड़ी—
रातो बोली यार कैसी होली ?
मानों मानों जी कुँअर कन्हाई, रँगीली रुत आई जी।
उड़े गुलाल सारा होग्या बेहाल,
गावै-गावै दै ताल, होली आई जी ॥"

बुन्देलखण्ड में ग्रामों में फाग खेलते समय कहीं-कहीं "अ र र र, भैया रे कबीर" कहते हुए फगवारे अश्लील दोहे और गीत भी पढ़ते रहे हैं। स्व० राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने इसका शिष्ट एवं संस्कृत रूप हमारे सामने रखा है :—

"यों कह उठाके पिचकारी एक सोने की,
केसर के रँग भरी देकर जयसिंह को—
दूसरी ले आय अविलम्ब धनी-धोरी ने,
स र र र धार छोड़ी, अ र र र करके ॥"
(सिद्धराज)

ऊपर जो मंगलाचरण के गीत दिए गए हैं वे प्राचीन फाग-गीत ही हैं। इन्हें फाग की लय में गाने के लिए गायक लोग 'अरे हाँ' पद भी प्रत्येक पंक्ति के आदि में जोड़ लेते हैं। यथा :—

"अरे हाँ, अभय तिरसूला पै कासी रच राखी। अरे हाँ०।
ओइ में बसत हैं बम्मन बनियाँ, ओइ में बसत हैं संन्यासी। अरे हाँ०।
अरे हाँ, कहा करत हैं बम्मन बनियाँ, कहा करत हैं संन्यासी। अरे हाँ०।
पुन्न करत हैं बम्मन-बनियाँ, तपो करत हैं संन्यासी।
अरे हाँ, अभय तिरसूला पै कासी रच राखी ॥"

'ईसुरी' की चौकड़िया की तरह प्राचीन फागें भी सभी विषय की पाई जाती हैं। भगवान रामचन्द्र के विवाह से सम्बद्ध एक फाग की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं :—

"अरे हाँ, जनकपुर हरे बाँस मण्डप छाए।
ब्याहन आए राजाराम, जनकपुर हरे बाँस०।
अरे हाँ, हरि की कौना मास लगुना भई, कौना में रचे है बिआव।
अरे हाँ, जनकपुर हो बांस मण्डप छाए।"

लोक-गीतों में प्रश्नोत्तर शैली प्रायः सर्वत्र मिलती है। यथा उक्त गीत

की तीसरी पंक्ति में प्रश्न किया गया है, जिसका उत्तर निम्न चतुर्थ पंक्ति में प्रस्तुत है :—

"अरे हाँ हरि की अगन मास लगुना भई ओई में रचे है वियाव।
अरे हाँ, जनकपुर हरे बाँस मण्डप छाए।"

संसार सागर में अपनी डगमगाती हुई जीवन-नैया से सम्बन्धित एक सुन्दर फाग है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं :—

"अरे हाँ, डोली-डोली फिरै भव-सागर में मोरी बिन करिया की नाव।
अरे हाँ, डोली-डोली फिरै भव-सागर में।

अरे हाँ, काहे की नैया बनी, काहे के बने किरवार। डोली०
अरे हाँ, चन्दन की नैया बनी, हरे बाँस किरवार। डोली०
अरे हाँ, को जो मोरी नैया बैठि है, को है खेवनहार। डोली०
अरे हाँ, राधा मोरी नैया बैठि हैं, श्रीकृसना खेवनहार ॥डोली०॥"

कुछ फाग-गीतों में 'अरे हाँ' के स्थान पर 'मोरे रसिया' भी लगा कर गाते हैं। यथा :—

"राधा के सहेली हो, मनमोहन पै आई। मोरे रसिया।
जुरमिल कैं इकठौरी हो, पहुँची जितै गुपाल। मोरे रसिया।
गाल गुलाल लगावैं हो, बरसानें की खोर, मोरे रसिया।"

एक ऐसी ही निम्न फाग-गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

"राधा खेलैं होरी हो मनमोहन के साथ, मोरे रसिया।
कै मन केसर गारी हो, कै मन उड़त गुलाल, मोरे रसिया।
नौ मन केसर गारी हो, दसमन उड़त गुलाल मोरे रसिया।"

आश्विन मास में उन्हारी की वोनी के समय 'बिलवारी' नाम के जो गीत गाए जाते हैं, उनसे भी उपर्युक्त फाग-गीतों की लय मिलती-जुलती है। कहीं-कहीं ऐसी फागों को ढप की फागें भी कहते हैं। इनका विशद-विवेचन 'बुन्देली का फाग-साहित्य' नामक लेखक के शोध-ग्रन्थ में पठनीय है। प्राचीन फाग-गीतों की विधाओं में एक विधा 'डिढ़ खुरयाऊ' फागें भी हैं। यथा :—

"अटा पै करिया बादर हो आए।
स्यामलिया तम्बुआ तान, अटा पै करिया बादर हो आए।"

खुर पैर को (छन्द का पाद) कहते हैं। डेढ़-पाद होने से इस फाग का नाम 'डिढ़ खुरयाऊ, फाग हो गया।

बुन्देली फाग-गीतों पर सर्वाधिक प्रभाव कबीर, सूर और मीराबाई के पदों का जान पड़ता है। मीरा अपने गिरधर नागर के साथ होरी खेलते-खेलते उनके चरणों में किस प्रकार लोट-पोट हो जाती हैं, यह आगे गीत में देखिए:—

"रँग भरी-रँग भरी, रँग सौ भरी री,
होरी आई प्यारी रँग सों भरी री।
उड़त गुलाल लाल भए बादर, पिचकारिन की लगी झरी री।
चोवा, चन्दन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी री।
'मीरा' कहैं प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पाँयन में परी री।"

इसी गीत के बजन पर रचित एक फाग पढ़िए—एक कृषक-युवती अपने बाबा से ज्वार को ग्राम से दूर के खेत में बोने का आग्रह कर रही है। कदाचित् उसे भय है कि—ग्राम के निकटस्थ खेत प्रायः उजड़ जाते हैं उसका कृषि-कार्य में उत्साह और श्रमशीलता भी गीत में झलक रही है। गीत है :—

"दूर बौ-दूर बौ, दूर बौरे, बाबा! जुनरिया दूर बौरे!
जब जुनरी भइ दो-दो पतौअन, लै खुरपी नींदन गई रे! बाबा०
जब जुनरी भइ करपा ऊपर, ले हर रे जेलन गई रे। बाबा०
जब जुनरी में मेंढ़ा बनाओ, मार कछोटी चढ़ गई रे। बाबा०।"

सन्तान न होने के दुःख से दुखी नारी का भगवान शंकर के प्रति विनय का एक निम्न फाग-गीत कितना करुणार्द्र है, पढ़िए :—

"तोरी सेवा करौं दिन रैने महादेव!
इक फल मोइ खाँ लगा दइयो। अरे हाँ, इक०।
ससुरा कहैं बहू बांझुलिया, बाँझ कौ नाव मिटाव, अरे हाँ महा०।
जेठा कहैं बहू बांझुलिया, बाँझ कौ नाव मिटाव, अरे हाँ, महा०।
देवरा कहैं भौजी बांझुलिया, बाँझ कौ नाव मिटाव, अरे हाँ महा०।

करौंली—निवासी नम्बरदार कुंवर अमोल सिंह भदौरिया ने कई पुरानी फागों के संग्रह प्रकाशित कराए हैं। चौक-कानपुर के श्रीकृष्ण पुस्तकालय से प्रकाशित १—'फाग रस रंग', २—'फाग महोदधि', ३—'फाग मंजरी' नामक तीन संकलन लेखक के पुस्तकालय में भी हैं। इनमें उन्होंने फाग इकताला, फाग-दुताला, फाग-तिताला एवं फाग-चौताला आदि शीर्षक देकर फागें संकलित की है। एकताला, दुताला फागें तो पदों की लय-धुनि में है। आप के संग्रह की तिताला और चौताला फागों में से एक-एक फाग यहाँ प्रस्तुत हैं :—

१—फाग तिताला

"हमें ननदी जनि बोलौ बोल? टेक॥
तुम सुनिये बचन कठोर। हमें ननदी०।
इत्यादि ·····॥" [फाग मंजरी से]

२—फाग चौताला दहंकवा

"दिल्ली माँ बेला कुँआरि, ऊदल ! चलो ब्रह्मा कौं ब्याह लैये ।
काहे के खम्बा गड़े-गड़े खम्बा न हों, काहे लै मांड़व छबाव ।
ऊदल ! चलो ब्रह्मा कौं ब्याह लैये ।
भालन के गड़े खम्बा, खम्बा न हों ढालन लै मांड़व छबाव ।
ऊदल ! चलो ब्रह्मा कौं ब्याह लैये ।
आधे मड़वा परैं भाँवरी, आधे मंड़वा परैं हों ।
आधे चलै तलवार, ऊदल ! चलो ब्रह्मा कौं ब्याह लैये ॥

प्राचीन फागों के कवि श्री फकीरे लाल जी की 'गान्धी-बहार' पुस्तक जो शुभ चिन्तक प्रेस, जबलपुर से प्रकाशित है, में राष्ट्रीय-फागें रची गई हैं । यहाँ कुछ फागों की दो-दो पंक्तियाँ दी जा रही हैं :—

फाग श्री गान्धी जी की

"समर जीते है गान्धी भारत में । फिर बिना तोप तरवार ।
बिना तोप तरवार राज लै लई है भारी ।
कांगरेस-सरकार हुकुम सब में रहो जारी ॥समर०॥

फाग श्री चरखा चक्रव्यूह ।

"फन्दा जे बाँकौ लगो गान्धी जी कौ, चरखा भओ चक्का ब्यूह ।"

× × ×

"रहो झंडा फहराई जग में, रहो झण्डा फहराई लाल ।
पूजें लोग लुगाई । जगमें, रहो झंडा फहराई लाल ॥"

× × ×

"हो गई अनुचित भाई । जग में हो गई अनुचित भारी लाल ।
गांधी कौं गोली मारी । जग में होगई अनुचित भारी लाल ॥"

फकीरे लाल जी की सभी फागें राष्ट्रीयता से प्रभावित हैं । फागकारों पर भी काल का असर पड़ा है ।

एक गीत में एक वीरांगना की उक्ति सुनिए । पति रण में वीर-गति को प्राप्त हो गया है तब यह बुन्देली वीरांगना क्या कहती हैं :—

"सदा न तुरैया अरे फूलै हो, सदा न सावन होय ।
सदा न राजा अरे रन जूझें, सदा न जीवै कोय ॥"

प्रसिद्ध जैनाचार्य जी श्री हेमचन्द्र जी ने भी इसी प्रकार की वीरांगना का चित्र निम्न दोहे में अंकित किया है :—

"भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणि महारा कन्त ।
लज्जेजं तु वयंसि अहु, जइ भग्गा घर एन्तु ॥"

अन्तर केवल इतना है, कि—"सदा न राजा अरेन जूझें" में एक की सहृदयता, शील और विनय भी सुरक्षित बना रहा एवं "भल्ला हुआ जोमा मारिया" और "जइ भग्गा घर एन्तु" में दूसरी की सहृदयता का पता ही नहीं चलता । बुन्देली फाग-गीतकारों या लोक-गीत कारों के हृदय से नारी सुलभ सौकुमार्य तथा वेदना की तीव्रानुभूति तिरोहित नहीं हो सकी । इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे 'ईसुरी' के पूर्ववर्ती फागगीतकारों की रचनाएँ भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं एवं बुन्देली-भाषा को गौरव प्रदान करने वाली हैं ।

—राठ, जिला हमीरपुर, उ० प्र०

कवी ईसुरी और दौरियावारे किसान

नौगाँव के नगीच कछू दूरी पै दौरिया गाँव । ऊ समै छतरपुर रियासत में हतो और राजा हते मराज विश्वनाथ सिंह जू देव । रियासत में कंजर ऊधम करत्ते, उनसें तंग आकें मराज ने गाँव की जिमीं-पट्टी उनखाँ दै दईती । गाँववारन खाँ उपजाऊ जिमीं जातन नागवार गुजरो, सो पंचायत जुरी । सलाय भई कै माराज सें बिन्ती करी जाय । पै आँगें को चलतो । जब न्याव होत न दिखानी, तौ एक पंच नें जुगत बताई कै ईसुरी कबी की बात माराज ज्यादा मानत । सबई पंच मिलकें ईसुरी के ऐंगर पौंचे उर अपनी बिपदा कैकें मंत्र पूंछन लगे । ईसुरी नें तुरत एक फाग बनाकें माराज खाँ पौंचावे दई । फाग लैकें एक पंच माराज की कचैरी में गओ और बिन्ती करकें उनें सौंप दई । माराज नें फाग दो बेर सुनीं और हुकम दओ कै दौरिया गाँव की बा जिम्मी-पट्टी गाँव के किसानन खाँ लौटा दई जाय । जी फाग सें माराज इत्ते ढ़र गये, बा छतरपुर के भइया गोविन्द प्रसाद वर्मा 'मधुकर' नें हमें लिखाई कै,

यैसी इतराजी के मारे, गोड़े कँपैं हमारे ।
बने रहत मरजी के भीतर हुकुम कौन दिन टारे ।
साखा बड़ी कंजरन दै दई खासे खेत हमारे ।
गौअन के आँगे सें लैकें गधन चरावत चारे ।
हैं गरीब बिन्वार ईसुरी दीन दौरिया वारे ॥

—प्रस्तुतिः सम्पादक

बुन्देली फागों में 'ईसुरी' का योगदान

• डा० नाथूराम चौरसिया

•

भारत की 'फागु' काव्य परम्परा अत्यंत प्राचीन है। फागु बसंतोत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले विशिष्ट गीत हैं। इस शैली में राजस्थानी और गुजराती में प्रचुर परिमाण में साहित्य सृजन हुआ है, जिसका प्रमुख स्रोत संस्कृत और अपभ्रंश की रचनाओं में उपलब्ध है। भारत के अनेक जनपदों की भाँति बुन्देलखण्ड में भी बसंतोत्सव या फाग का त्योहार अत्यंत हर्षोल्लास, उमंग एवं उत्साह के साथ मनाया जाता है। बसंतागमन प्रायः माघ शुक्ल पंचमी से माना जाता है। इसी दिवस से बुन्देलखण्ड में आनन्दोल्लास, हर्ष एवं रस और भावों से लबालब भरे गीतों की बाढ़ सी आने लगती है, जिसमें सर्वाधिक प्रचलन फाग का ही है।

ईसुरी के पूर्व बुन्देलखण्ड में फाग गीतों के अनेक रूप प्रचलित थे। जैसे—छन्दयाऊ, डिड़खुरयाऊ, सखयाऊ, टपयाऊ लपिड़याऊ और खड़ी फागें आदि। ईसुरी ने लोकगीत की इसी विशिष्ट विधा फाग गीत को अपनाया और उसमें संशोधन करके एक नये रूप को जन्म दिया, जिसे 'चौकड़िया फाग' कहते हैं। इसमें प्रायः चार कड़ियाँ हैं। कहीं-कहीं अधिक भी। परन्तु अल्पमात्रा में। चौकड़िया फाग 16 और 12 मात्रा के विश्राम से 28 मात्राओं का छंद होता है। इसके अन्त में दो गुरु होते हैं। छन्द-शास्त्र के अनुसार इसे नरेन्द्र और ललित पद की श्रेणी में इसे रखा जा सकता है। इनकी अधिकांश काव्य-रचना इसी रूप में हुई है। इनकी फागें संगीत की दृष्टि से लोकधुनों में गाई जाती हैं, लेकिन इसे ईमन और कल्याण आदि रागों में गाया जाने लगा है।

बुन्देलखण्ड में होलिकोत्सव पर फगुवारे अत्यंत आदर, चाव और सम्मान के साथ ईसुरी की सरस, रसीली और चुटीली फागों को गाते नहीं अघाते

और अपार आनंद का अनुभव करते हैं। इनकी भाषा शुद्ध बुन्देली होने के कारण इनमें सरसता और माधुर्य का अनूठा सामंजस्य हो गया है, जो जन साधारण के मन को बरबस अपनी ओर चुम्बक की भाँति आकृष्ट करलेने में समर्थ है। लोककवि ईसुरी का समय विशेष परिवर्तन का था। जीवन की विभिन्न गतिविधियों में मानव इतना व्यस्त है कि उसे मनोरंजनादि के लिये फुरसत ही कहाँ? और समय है भी तो बहुत कम। ईसुरी ने समय की इस गति को पहचान कर व्यस्त मानव की प्रकृति को समझा। परिणामस्वरूप चौकड़िया नाम की चारकड़ी की एक ऐसी फाग को जन्म दिया, जो सर्वथा नूतनता लिये हुये, नवीन शैली और स्वर लहरी में, कम से कम समय में गाई जा सकने वाली तथा मन को स्पर्श करने वाली, चुटीली बातों को अपने में संजोये हुये थी।

प्रकृति के वरदान के रूप मे ईसुरी को सुरीला कंठ भी प्राप्त था। वे फागें बनाते भी थे और गाते भी। प्रारम्भ में लोग इस प्रकार की फागों को 'ईसुरी की फागें', 'फाग ईसुरी' या 'ईसुरयाऊ फागें' के नाम के सम्बोधित करते थे। चार कड़ियाँ होने के कारण बाद में 'चौकड़िया' कहना प्रारम्भ हुआ। बुन्देलखण्ड में ईसुरी की फागें ही पुकारी जाती हैं। इनकी फागें ठेठ बुन्देली में होने के साथ ही साथ सरस, सरल, भावप्रधान, मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी होती हैं। इनके विषय विविध हैं, परन्तु शृंगार की प्रधानता है।

ईसुरी की फागों में बुन्देलखण्डी लोकजीवन का सफल चित्रण हुआ है। बुन्देलखण्ड की तत्कालीन सामाजिक स्थिति, पारिवारिक परम्पराएँ और राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव इनकी फागों में परिलक्षित होता है। परिवार से पति-पत्नी सास-बहू, ननद-भौजाई, देवर-भाभी आदि के मधुर और कटु दोनों ही प्रकार के सम्बन्धों का अंकन इनकी फागों में उपलब्ध है।

ईसुरी की फागों को इस जनपदीय जीवन के अनेक पक्षों का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। इनके वर्ण्य विषय दैनिक जीवन में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनायें हैं। इन्होंने लोक जीवन के प्रत्येक अंश का वर्णन किया है। इनकी फागों में बुन्देली के परिनिष्ठित और साहित्यिक रूप के साथ ही भावानुकूल शब्द-चयन, धारावाही प्रवाह, चित्रोपमता, स्वाभाविकता और सरलता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। बुन्देली भाषा को व्यापक और प्रभावशाली बनाने का इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी भाषा में भावानुकूलता के साथ ही साथ सपाटबयानी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इनकी शैली भी हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिये अत्यंत उपयुक्त है। इसी लिये इनकी शैली अपनी पृथक विशेषतायें रखती है। वे जो कुछ कहते है,

अत्यंत सीधे सादे ढंग से, परन्तु इस सिधाई मे एक बाँकपन रहता है। इनकी अतिशयोक्तियाँ अत्यंत स्वाभाविक रहती हैं। इनकी फाग की प्रथम दो पंक्तियाँ इतनी प्रभावशाली होती हैं कि श्रोता के कान अपने आप खड़े हो जाते हैं। उसका ध्यान पास पर केन्द्रित हो जाता है। इनकी फाग की प्रथम पंक्ति को द्वितीय पंक्ति का जबरदस्त समर्थन रहता है। इसीलिये बुन्देली के विद्वान और फागों के गायक केवल फाग सुनकर यह संकेत कर सकते हैं कि भाषा और शैली की दृष्टि से यह फाग ईसुरी की ही है। इनकी फागें बुन्देलखण्डी लोक जीवन को वहन करने की क्षमता रखती है।

ईसुरी ग्राम्य संस्कृति के सच्चे पारखी थे। इनकी फागों में ग्राम्य जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक और अनूठा चित्रांकन हुआ है। ग्राम्य संस्कृति का पूरा इतिहास इनकी फागों में उपलब्ध है। इसीलिए इनकी फागें न केवल अपने अंचल में वरन् सुदूरवर्ती भागों में लोकप्रियता प्राप्त कर सकीं हैं। इनकी फागें बुन्देली जन-मानस के रंजन एवं मस्ती जुटाने मे पूर्णरूपेण समर्थ हैं। बुन्देलखण्ड में होली के अवसर पर ढोलक की ढमक, झांझ की झमक एवं नगड़िया की ठनक के साथ बुन्देली लोकगायकी वातावरण में सजीवता ला देती है। जिन्होंने इनकी जादुई भरी फागों की लोक कंठ से श्रवण किया है, वे ही स्वीकार कर सकते हैं कि इनकी ध्वनि कान में पड़ते ही ग्रामवासियों के मलीन चेहरे खिल उठते हैं और नेत्रों में एक दिव्य आभा झलकने लगती है। इनकी फागों को बुन्देलखण्ड के फगुवारे उल्लसित नृत्यनिमग्न मयूर की भाँति थिरकते हुये गाते नहीं अघाते और एक अपार आनन्दानुभूति का अनुभव करते हैं।

'राई' बुन्देलखण्ड का नृत्य है, जो प्रमुख रूप से होली के अवसर पर हुआ करता है। ईसुरी की फागों का इसी नृत्य के साथ गायन होता है। ईसुरी स्वयं फाग बनाते और गाते थे परन्तु इनकी फागों के नामीगवैया धीरे पण्डा थे। धीरे पण्डा का फाग गायन और एगिया एवं सुन्दरिया रंगरेजिन भगिनीद्वय के नृत्य ही बुन्देलखण्ड में इनकी फागों की प्रसिद्धि को प्रमुख कारण बने। धीरे पण्डा की मोहनी भाखा के साथ रंगरेजिन भगिनी द्वय के नृत्य ने इनकी फागों के प्रचार या प्रसार में चार चाँद लगा दिये। धीरे के विषय में ईसुरी ने कहा है —

> इनकी बड़ी मोहनीं भाखा चलै अँगाउँ साखा।
> इनकी कहन लगत औरन खौं, गोली कैसो ठाँका।
> बैठे रऔ, सुनां सब वेसुध, खेंचें रऔ सनाका।
> दूनर होत नचनियाँ फिर-फिर, मई कौं जात छमाका।
> फागन खौं हैं धीरे पण्डा, 'ईसुर' आँय पताका।

इसी प्रकार रंगरेजिन भगिनी द्वय के बारे में ईसुरी ने लिखा है—

> नैना तरवारन सैं पैने, करे सामने तैने।
> घायल करदओ मुलक भरे खौं, ऐसी दई की दैने।
> प्राण हरन सुन्दरिया, एगिया, एकई सी दोई बैने।
> ऊसई पैने नैन तुमारे, कछु चलत हैं सैने।
> 'ईसुर' कात सामने परकैं, सये ससन भर मैंने।

कहा जाता है कि ईसुरी इनपर आसक्त थे। इनके कार्य व्यापार पर मोहित होकर उन्होंने कहा है—

> नैना भँवर भये बारी के, रंगरेजिन प्यारी के।
> एक से दोउ वेषधारी हैं, रुचिर रेख कारी के।
> सालिगराम बीच कमलन के, चितवन अनयारी के।
> लेत सुगंध फूल भये फूले, मानस संसारी के।
> 'ईसुर' पड़े इसक के फन्दे, आसिक हैं यारी के।

वास्तव में रंगरेजिनों के पदों की घुंघरुओं की छमा-छम की मधुर ध्वनि एवं पण्डा धीरे की मधुर कण्ठ ध्वनि से सारा जनसमूह उमंग से झूमने लगता था। धीरे की मोहनी भाखा गोली का काम करती थी, जिसे सुनकर लोगों में सन्नाटा छा जाता था। साथ ही रंगरेजिन भगिनी द्वय के सुसज्जित होकर नृत्य करने तथा भ्रूविक्षेप के कारण सारा जनसमुदाय खबरभूल हो जाता था, बेचारे देखने वालों की तो आफत ही गुजरती थी। इस प्रकार ईसुरी अथवा पण्डा धीरे का फाग-गायन एवं रंगरेजनि भगिनी द्वय के नृत्य ने एक साथ इनकी फागों के प्रचार में एक विज्ञापन का कार्य किया। यही कारण है कि ईसुरी की फागों के समान दूसरे जनपद में एक कवि की ऐसी कविता का प्रचार दृष्टिगोचर नहीं होता, जैसा कि बुन्देलखण्ड में ईसुरी की कविता का उपलब्ध होता है। ईसुरी ने अधिकांशतया चौकड़िया फागों की ही सर्जना की है, जिनका होली के अवसर पर गायन होता है, परन्तु इन्होंने इसे होली तक ही सीमित न रखकर एक स्वतंत्र छंद के रूप में प्रयुक्त किया और श्रृङ्गार के अतिरिक्त करुण, शान्त और भक्ति रसों में इस छंद का सफल प्रयोग किया।

फाग-साहित्य की लोकप्रियता एवं उसके विकास में फड़बाजी की भी प्रमुख भूमिका है। काव्य क्षेत्र में इस फड़बाजी का प्रचलन एक विषय की रचनाओं तथा समस्यापूर्ति के साथ हुआ। ईसुरी प्रतिभा-सम्पन्न कवि

थे। बात-बात में फाग बनाकर कह देने में इन्हें कमाल हासिल था। धवर्रा और बघौरा में उस समय फाग मंडलियाँ थीं, जिनमें फाग प्रतियोगितायें चला करती थीं। छतरपुर निवासी श्री गंगाधर व्यास ने ईसुरी से प्रभावित होकर अनेक फागों की सृष्टि की। उपर्युक्त दोनों फाग-मंडलियों में से कोई कवि किसी एक दल का प्रतिनिधित्व कर लेता था और इन दोनों दलों में प्राय: फाग प्रतिस्पर्धायें चला करतीं थीं। यह प्रतिस्पर्धा कभी रूप-वर्ण को लेकर कभी काव्य शास्त्र, ज्योतिष या अन्यविषय नायिका-भेद आदि पर हुआ करती थीं। फागों के फड़ों में गाते-गाते ही ईसुरी सहज रूप में अपने फाग मुक्तकों की सर्जना करने में समर्थ थे। इनके फाग मुक्तकों में संक्षिप्तता, सम्बद्धता और भाव की अन्विति आदि विशिष्टतायें उनको सजीव बना देती हैं। गेयता तो उनका प्राण है। आचार्य होने के नाते ईसुरी के सम्मुख कोई भी कवि प्रतिद्वन्द्वी बनकर उपस्थित होने का साहस नहीं करता था, परन्तु व्यास जी आये दिन मोर्चा सम्हालते थे। वे फड़बाजी के लिये लिखी गई फागें अत्यन्त चमत्कार पूर्ण, आकर्षक एवं मधुर होतीं थी और इन फागों में कवियों की प्रतिभा के पूर्ण विकास के दर्शन होते हैं। कहना न होगा कि बुन्देलखण्ड में फागों की फड़बाजी के लिये ईसुरी ने एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया।

लोककवि ईसुरी जिस समय अपनी वाणी से बुन्देलखण्ड के रसिक समाज मानस को रसाप्लावित कर रहे थे, उस समय बुन्देली में कोई भी ऐसा प्रतिभाशाली कवि नहीं था, जो उनका मार्गदर्शन करता। ईसुरी ने अपनी चमत्कारिक प्रतिभा पर पूर्णरूपेण आश्रित रहकर एक पृथक मार्ग निर्धारण किया, जिसके द्वारा वे अपने लक्ष्य पर सफलतापूर्वक पहुँच गये और बाद में यह परिष्कृत मार्ग बुन्देली में फाग सृजनकर्ताओं के लिये प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हुआ। ईसुरी मुख्य रूप से चौकड़िया फागकार थे। बुन्देली के अन्य चौकड़िया फागकार श्री गंगाधर व्यास, श्रीख्याली राम, श्री रसिया, श्री मनभावन आदि ईसुरी की विचार धारा से पर्याप्त साम्य रखते थे। गंगाधर व्यास ने ईसुरी से प्रभावित होकर अनेक फागों की सर्जना की। चौकड़िया फाग में दो मात्रायें और बढ़ाकर खड़ी फाग बनाई, जो चौकड़िया की ही भाँति लोकप्रिय हुई। दोनों ने एक ही जैसी फागों की सृष्टि की। फड़बाजी के लिये लिखी गई रंगत की एक-एक फाग प्रस्तुत है। ईसुरी की नायिका के मुख पर अवस्थित गोदना का चिन्ह देखिये—

> गुदनू गोरे गाल पै टाँकौ, लगा गई गुदना कौ।
> पन्ना हरो जड़ो सोने में, मानो बड़ी जमा कौ।
> बुध को गोद लयें यों राजत, परत चंद्र में झाँकौ।
> विष की बूंद लयें ग्रीवा में, बैठो पती उमाँ कौ।
> 'ईसुर' कात नजर लग जैहै, घूंघट पट सें ढाँकौ।[१]

इसी प्रकार गंगाधर का गोदना वर्णन देखिये—

> गुदना लगत गाल पै प्यारौ, गोरी चतुर तुमारौ।
> गोरे बदन गाल के ऊपर, बनबैठो रखवारौ।
> देखन देव नजर भर हमखाँ, न घूंघट पट डारौ।
> ठाँड़ी होओ देख लैं चित मैं, जी ललचात हमारौ।
> 'गंगाधर' की तरफ हेरलेव, दैकैं तनक इसारौ।[२]

उपर्युक्त दोनों फागें, दोनों कवियों ने एक ही विषय को लेकर लिखीं हैं। ईसुरी में हमें बहुज्ञता के दर्शन होते हैं। जहाँ ईसुरी ने गोदना के चिन्ह को लेकर ज्योतिष, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के दर्शन होते हैं, वहाँ गंगाधर में एक सामान्य वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसुरी की भाषा में सहजता, सरलता, अभिव्यंजना की उत्कृष्टता और मार्मिकता है, वहाँ गंगाधर में इसका अभाव है। इस आधार पर व्यास जी भाव, भाषा और शिल्प आदि क्षेत्रों में ईसुरी से प्रभावित थे और गंगाधर ने तो यहाँ तक कहा—"'गंगाधर' ईसुर रसिया ने फाग कहे कै जादू।"

श्री ख्याली राम भी ईसुरी के समकालीन थे। श्री ख्याली ने मुख्य रूप से चौकड़िया फागें ही लिखी हैं। दोनों कवियों की नेत्र विषयक एक-एक फाग दृष्टव्य है—

> ऐसे अलबेली के नैना, मुख सौं कात बनैना।
> सामै परै सोउ छिद जैहै, अगल-बगल बरकैना।
> लागत चोट निसाने ऊपर, पंछी उड़त बचैना।
> जियरा लेन पराये, 'ईसुर' जो निरदई कसकैना।[३]

> ऐसे अलबेली के नैना, कवि सौ कात बनैना।
> मधुकर मीन कंज की लाली, टकसाली के है ना।
> औसर पाय पुराने खंजन, डर सौं डगर बसै ना।
> 'कविख्याली' आली नैनन सौं, बनमाली उतरै ना।[४]

इस प्रकार भाषा, भाव और शैली तीनों रूपों में ख्यालीराम, ईसुरी से प्रभावित हैं। ईसुरी की सी अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता का अभाव उनमें खटकता है।

१, २. बसंत की फागें-फाग सं० १६८, १६६।
३. ईसुरी प्रकाश-फाग सं० १२२।
४. बुन्देली का फाग साहित्य पृ० सं० ३१६।

'रसिया' ईसुरी के समसामयिक चौकड़िया फागकार थे। इन्हें बुन्देली घनानंद कहा जाता है। दोनों कवियों की एक-एक फाग प्रस्तुत है—

'ईसुरी' जौ तन हो गओ सूक छुआरो, असई हतो इकारो।
रैगई खाल हाड़ के ऊपर, मकरी कैसो जारो।
तन भओ माँस, बाँस भओ पिंजरा, रकत रओ न सारो।
कात 'ईसुरी' सुनलो प्यारी, खटका लगो तुमारो।[1]

'रसिया' जौ तन हो गओ सूख छुहारो, नेही तनक निहारो।
काया भई सूक कैं पिंजरा, ऊसई हतो इकारो।
लिपटी खाल हाड़ के ऊपर, मकरी कैसो जारो।
न मांसे भर मांस बदन में, नइयाँ रकत फुहारो।
'रसिया' कहैं आस मिलबे की, कड़ँ न हंस बिचारो।[2]

उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रसिया वस्तु और भाव वर्णन की दोनों दृष्टियों से ईसुरी से प्रभावित हैं। यहाँ तक कि इन्होंने कतिपय भाषाई परिवर्तन के साथ ईसुरी की पंक्तियाँ ज्यों की त्यों अपना ली हैं।

'मनभावन' चौकड़िया फागकार थे। ये ईसुरी के समकालीन थे। दोनों ही फड़बाजी में उपस्थित रहा करते थे। अब दोनों कवियों का श्यामल चिकने केशों की लम्बी वेणीं का वर्णन प्रस्तुत है –

गोला मौ पै पटियाँ पारें, सुन्दर मांग समारैं।
मानो स्वच्छ चन्द्र के ऊपर, कागा पंख पसारैं।
'ईसुरी' दोऊ तरफ वहैं सुन्दर सीं, गंगा जमुना धारैं।
तिरवेनी वैनी खौं देखत, रातीं सिमट किनारैं।
'ईसुर' कात दरस के होतन, कलमल सिखर निकारैं।[3]

'मनभावन' पटियाँ मन हरवे खौं पारैं, रच-रच मांग समारैं।
चुटिया चुस्त वंदी चुटला सै, गुरियाँ कुच पै डारैं।
ऊपर मांग भरी मौतिन की, सीस फूल कौ धारैं।
'मनभावन' मन हरवे कारन, हर-हर वेर उघारैं।[4]

---

१. ईसुरी प्रकाश-फाग सं० १८३।
२. विन्ध्य के लोक कवि-पृ० सं० ३६-४०।
३. ईसुरी प्रकाश-फाग सं० १२६।
४. विन्ध्य के लोक कवि-पृ० सं० ३५, ३६।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि ईसुरीकालीन लोक कवियों का फाग साहित्य ईसुरी से वस्तु एवं भाव वर्णन की दृष्टि से पूर्णतया प्रभावित है। इतना ही नहीं, कतिपय भाषाई परिवर्तन के साथ इन लोक कवियों ने ईसुरी रचित फागों को अपने काव्य में ज्यों का त्यों उद्धृत भी किया है। निसंदेह हम कह सकते हैं कि ईसुरी जैसी काव्यगत सहजता, मार्मिकता तथा प्रभविष्णुता अन्य कवियों की फागों में दृष्टिगत नहीं होती।

बुन्देली फाग काव्य-धारा में ईसुरी ने क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उन्होने जन-मन के अन्तस में पैठकर उसे आह्लादित किया। मानव मनका जितना ज्ञान ईसुरी को था, उतना उनके पूर्ववर्ती कवियों को शायद ही रहा हो। यही कारण है कि उनकी फागें हर शिक्षित-अशिक्षित के मन में बैठ गईं हैं। जैसा सहज, सरल और हंसोड़ उनका व्यक्तित्व था, वैसी ही उनकी फागें भी। इसीलिये उनके समकालीन और परवर्ती फागकार उनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके। गंगाधर, ख्यालीराम, रसिया बोधन, मनभावन, रामप्रसाद, द्विज दुर्गा और भुजबल सिंह आदि का नाम इस क्षेत्र में फाग के संदर्भ में विशेष प्रचलित है। फागों के समस्त रचनाकार ईसुरी के ऋणी हैं। इन सभी ने फागों के क्षेत्र में ईसुरी की श्रेष्ठता स्वीकारी है और मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की है। मेरा तो यह कहना है कि ईसुरी के बाद से अनेक कवियों ने फाग सर्जना की और आज भी कर रहे हैं, लेकिन वे ईसुरी से आगे नहीं निकल पाये। इस प्रकार समकालीन और परवर्ती फागकारों में ईसुरी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उनकी मृत्यु को आज ७२ वर्ष हो चुके हैं, परन्तु उनका महत्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। जन-मन के कंठहार ईसुरी की फागें बुन्देलखण्डी जनपद में जब तक यौवन और उल्लास रहेगा, तब तक गाई जाती रहेंगी।

पिपट (बिजावर), छतरपुर, म० प्र०

गंगाधर व्यास पर रीति-प्रभाव

• श्रीनिवास शुक्ल

•

लोककवि गंगाधर व्यास रीतिकालीन परम्परा की उपज थे। लोककवि को रीतिकाव्य से जोड़ना संगत सा प्रतीत नहीं होता क्योंकि लोककाव्य रीतिकाव्य नहीं होता और रीतिकाव्य लोककाव्य नहीं होता। दोनों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। यदि कोई हो भी सकता है तो बहुत दूर का, अप्रत्यक्ष। लोककाव्य का स्फुरण लोक-संस्कृति की संवेदनशील चेतना से होता है, सहज, स्वाभाविक अनुभूति के स्पंदन से होता है और उसकी अभिव्यक्ति भी अकृत्रिम, आडम्बरहीन और अनायास होती है और उसकी विशेषता होती है कि वह जन्मते ही लोक-मानस-अजिर बिहारी बन जाता है, जनमानस में थिरकने लगता है। लोककाव्य ग्रामीण-जनता का सामान्य-जन का लिखित-अलिखित परम्परागत, कंठ-कंठ में गूंजता साहित्य है। इसका आश्रय आलम्बन-उद्दीपन, उपमा-उपमेय-उपमान, प्रथापरम्परा-प्रभाव, आस्था-विश्वास, प्रस्तत-अप्रस्तुत विधान, प्रतीक, बिम्बांकन, मान-प्रतिमान, काव्यरचना के समस्त उपकरण लोक-संस्कृति के अधिष्ठान पर अंकुरित होते हैं। जबकि रीति काव्य अभिजात्य संस्कृति से अनुप्राणित होता है, वैभव-विलास में पलता-पनपता है। प्रायः राजा, रईसों, अमीर-उमराव के दरबारों में, दरबारों के लिये और दरबारी प्रकृति-सम्पन्न कवियों द्वारा ही रीति काव्य की सर्जना की जाती है। इसका अंलकरण, इसे छन्द कला का रंग-रोगन देना ही रीति-काव्य का प्रधान लक्षण है। नायिका भेद, नख-शिख-चित्रण में ही रीति कवि रमता है। इसमें भाव-पक्ष अनुभूति-पक्ष गौण होता है, आनुषंगिक होता है। साहित्य के सत्यं, शिवं, सुन्दरं के मूल स्वर से टूटकर अपने आश्रयदाता के विरुद्ध बखानना, उसकी अतिशयोक्तिपूर्ण

प्रशंस्ति-गायन करना इस काव्य का स्वभाव है। रीतिकाव्य सीमित परिवेश में जकड़ा हुआ, वासना-उन्नमेष और कामुक-वृत्तियों की कसरत करने वाला काव्य बनकर रह गया और शेष समाज से, समाज-जीवन के विविध व्यवहार-व्यापारों से, अभिरुचियों-प्रवृत्तियों से वह सर्वथा असम्पृक्त हो गया। वह समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब नहीं बन सका। रीतिकालीन कवि का प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन करना, राजदबार में वाहवाही, मान सम्मान प्राप्त करना मात्र रह गया था, साहित्योपासना नहीं। किन्तु लोककाव्य और रीतिकाव्य के नाते को भी सर्वथा नकारा नहीं जा सकता। लोककाव्य पर भी प्रत्यक्ष रूप में कहीं न कहीं कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ा ही है। लोककाव्य में प्राकृत छंद-विधान, रस, अलंकार का प्रच्छन्न स्वरूप स्थल-स्थल पर छिटका पड़ा है भक्तिपरक रचनायें भी लोककाव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। तात्पर्य यह है कि लोक काव्य कोई ऐसा काव्य नहीं है, जो साहित्य की विभिन्न विधाओं या शैलियों से सर्वथा अप्रभावित हो।

गंगाधर को इसी परिवेश में देखना होगा। उनका अधिकांश साहित्य लोक जीवन की विविध रीति-नीतियों, आस्थाओं, विश्वासों, आचार-विचारों से जुड़ा हुआ है और उन्होंने अपने आचार्यत्व को प्रमाणित करने के लिये रीति काव्य से प्रभावित रचनायें भी कम नहीं की हैं। वैसे उनके विषय में यह लांछन लगाने की गुंजाइश कहीं नहीं है कि उन्होंने राजा और राजदरबार की प्रशस्ति में, धन कमाने अथवा यश अर्जित करने के प्रयोजन से काव्य सर्जना की हो। रीति काव्य को केवल हास-विलास का ही साहित्य नहीं कहा जा सकता। उसने भी राष्ट्रीय भावना से उत्प्रेरित भूषण जैसे ओजस्वी कवि को जन्म दिया, जिसने शिवाजी जैसे राष्ट्रनायक की राष्ट्रीय भावनाओं को प्रखरतर बनाया और आचार्य केशव दास जैसे कवि ने रामचन्द्रिका का प्रणयन करके भक्ति का कुछ न कुछ संस्पर्श तो किया ही। इस प्रकार एक शैली और दूसरी शैली के काव्य के बीच कोई अलंघ्य सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। व्यासजी ने भक्तिपरक, शृंङ्गारपरक पौराणिक आख्यानपरक और लोकजीवनपरक रचनायें की हैं। यहाँ उनकी हर शैली की रचनाओं के उदाहरण देना तो प्रासंगिक न होने से सम्भव नहीं है, किन्तु व्यास जी की रीति-प्रधान काव्य की चर्चा चूंकि मेरे द्वारा की जा रही है, इसलिये उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। व्यासजी ने स्वकीया नायिका का बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है :—

सरित नहात, सर तटको न जात, फूल
देखत डरात, चाह राखे कलि कान की।

केशर को अंग राग तापै अनुराग करै
डरै देख मलय न चाहे प्रभा मान की।
गंगाधर कहै लहै चन्द्रिका सौं प्रीत, नहीं
चन्द्र सौ प्रतीत, भीत मानै दीप दान की।
मौतिन को हार देख होत मन हारता है
बीरी कौ सुचाहें, परवाहै नहीं पान की ॥

मनसा-बाचा-कर्मणा अपने पति के प्रति ही जिसका पूर्ण समर्पण हो, वह है स्वकीया। इस उदाहरण में ऐसी नारी का चित्रण है, जो न केवल परपुरुष को कल्पना से दूर है बल्कि पुल्लिग वस्तुओं तक में उसका अनुराग नहीं है। एक वयः संधि सोपान पर आई हुई मध्यानायिका का चित्रण देखिये :—

बोली एक आलीकर मन में खुसाली आप
राधा तेरे अंग को सिंगार हूँ बनाऊँ मैं।
कंकन सुकिकनी औ चोली चारू रेशम की
सारी जरतारी की सुनीबी चुनवाऊँ मैं।
गंगाधर लेकर समूह सब जेवर को
जकसी रही हैं कहा अकल दौराऊ मैं।
गाढ़े नग ढीले होत ढीले नग गाढ़े होत
कौन कौं उतारूँ कौन, कौन पहराऊँ मैं।

एक दूसरा उदाहरण प्रेम गर्विता नारी का है, जो अत्यन्त अनूठा है और जो बुन्देली संस्कृति का उदाहरण है, देखिये—

आली लरिकाई तें सो आई तरुणाई तन
सास नंद मेरे इस नेह में सनी रही।
भूषण अमोल, बड़मोल के निचोल पैरें
तिनमें अमोल लग कौरिन कनी रही।
गंगाधर कहै और सुख है समस्त मौहि
साँची कहौं तो सो लग इतनी घनी रही।
काहूँ तै न रहो रोस मोरे मन रहो मोहि
घूंघट के घालिबे की लालसा बनी रही॥

नायिका भेद रीति काव्य की ही देन नहीं है, अपितु इसके पीछे हिन्दी भक्तिकाल का स्रोत भी है। भक्ति साहित्य में नायिका का प्रवेश बंगाली वैष्णव आचार्यों के द्वारा हुआ है। भक्ति का चर्मोत्कर्ष राधा गोपी के प्रतीकों द्वारा रूपायित हुआ है। भारतीय संस्कृति की भक्ति-धारा का संगम नायिका-

भेद से हो जाना एक विशेष सांस्कृतिक घटना कही जायेगी, जिससे सौंदर्य-माधुर्य और लालित्य में अपूर्व श्रीवृद्धि हुई है। विद्यापति ने नायिकाभेद का जो ललित साहित्य दिया है, उसी परम्परा में बृज-साहित्य के भक्त कवियों ने इसको स्पर्श किया, है बुन्देली साहित्य भी बृज साहित्य की तरह नायिका भेद की दृष्टि से खूब सम्पन्न है।

गंगाधर व्यास की रचनाओं में रीति परम्परा का प्रभाव होने के साथ उनकी जो उल्लेखनीय विशेषता है, वह है मेरे साहित्य को नई विधा का जन्म देने की और उसे रीति परम्परा से ओत-प्रोत करने की। सैर शोमधर छन्द का अपभ्रंश शब्द है, जो इस क्षेत्र में प्रयुक्त होता है। इसमें चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें। प्रत्येक १२ मात्रा पर यति और फिर १० मात्रायें इस प्रकार २२ मात्राओं के चार चरण वाला सैर छन्द पहले चलता था। इटावा निवासी पं० बाबू लाल ने सैर दिल तरंग लिखी। इसी प्रकार जबलपुर-निवासी पं० जगन्नाथ मिश्र ने सैर वाटिका नामक पुस्तक की रचना की। ये सैरे न तो जन साधारण में प्रचलित थीं और न इनका कोई साहित्यिक स्वरूप निखर पाया था। व्यास जी ने इसकी काया बदल दी। उन्होंने सैर को चार चरण के स्थान पर तीन चरण का कर दिया और हर तीसरे चरण में एक टेक। सैर के प्रारम्भ मे दोहा, सोरठा का जड़ाव और उक्त तीन-तीन चरणों के चार छन्द मिलाकर एक झूमका बनाने की नई प्रणाली उन्होंने चलाई। छतरपुर में सैरों का अंकुर फूटा और क्रमशः पल्लवित पुष्पित होकर बुन्देल-खण्ड के विशाल भू भाग में वट वृक्ष की भाँति छा गया। छतरपुर में इसके दो अखाड़े या दल हैं जो व्यास जी के समय से ही ज्यों के त्यों चले आते हैं। एक दल के नेता थे व्यास जी तथा दूसरे दल के नेता थे पं० परमानन्द पाण्डे। दोनों दलों में साहित्यिक स्पर्द्धा चलती है जो साहित्यिक अभिरुचि का प्रसार-प्रचार करने में संलग्न है। इनमें कोई वैमनस्यता नहीं। दोनों दल व्यास जी के प्रति समान रूप से श्रद्धावान हैं। दोनों दल की फड़वाजी बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध है। जब दोनों दल सैर की गम्मत में बैठते हैं, तो श्रोताओ की भीड़ लग जाती है। गम्मत में ढोलक, मंजीरा, घेरा जैसे वाद्यों का प्रयोग होता है और जब ये साहित्यिक-प्रतियोगिता छिड़ती है, तो हार-जीत की होड़ में ये दल हफ्तों गम्मत में बैठे रहते हैं। सैर की एक पंक्ति दल का एक गायक उठाता है और दल के शेष गायक उसे दुहराते हैं। इन सैरों में नायिका-भेद के प्रश्नोत्तर काव्य के लक्षण पौराणिक आख्यान के प्रश्नोत्तरों की झड़ी लग जाती है। जो दल प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाता उसका झण्डा झुक जाता है और विजयी दल अपना झण्डा ऊँचा किये हुये विजयोन्माद में फड़ से उठकर रास्ता-रास्ता गाता

चला जाता है और गणेश पूजन करने के उपरान्त विसर्जित हो जाता है। विशेषता यह है कि दोनों दल कण्ठाग्र छन्दों को ही सुनाते हैं। व्यास जी आशु कवि थे और जब कभी कोई जटिल प्रश्न के उत्तर देने का संकट सामने आता था, तो तत्काल आशु रचना करके व्यास जी प्रश्न का समाधान कर देते थे। व्यास जी की इस परम्परा को उनके शिष्य स्व० श्री रामदास नामदेव एवं श्रीराजाराम शुक्ल एवं गोकुल प्रसाद महाशय ने यशस्वी ढंग से अक्षुण्ण रक्खा है और श्री रामनाथ गुप्त हरिदेव उसी रूप में इस परम्परा को प्रवहमान किये हुये हैं। इस सैर साहित्य में भक्ति, श्रृङ्गार, वीर आदि नवरस हैं। नायिका भेद की भरमार है। बुन्देली जीवन की विविध झाकियाँ हैं और चमत्कारों का प्राचुर्य है। व्यास जी के सैर-साहित्य में ककहरा, निरोष्ठ, दुअंग, चौअंग, कूट, लतापक्ष इत्यादि चमत्कारिक प्रयोग खूब हुये हैं। ककहरा उसे कहते है, जहाँ सैर के प्रथम चरण में 'क' दूसरे में 'ख' तीसरे में 'ग' इसी प्रकार से क्रमशः वर्णों का प्रयोग होता है। निरोष्ठ अधर छन्द वह है, जिसके पाठ में अधर और ओष्ठ का संयोग न हो। दो अंग में चरण के आदि और अन्त में समान अक्षर या शब्द की आवृत्ति होती है और दूसरे चरण का प्रारम्भ उसी अक्षर या शब्द से होता है। चौ अंग में चरण के आदि और अन्त के अतिरिक्त चरण में चार बार समान अक्षर की आवृत्ति होती है तथा उस अक्षर या शब्द से आगे के चरण का आरम्भ होता है। धर का दुअंग और निरोष्ठ सैर का उदाहरण देखिये—

धर हाथ चली सखियाँ दध लीना सिर धर
धर लयी गैल जितकी श्रीकृष्ण तेज जिधर
धरनी न गनै कैसी देखे जिधर तिधर
धर धर के अधर मुरली झनकारे गिरधर

इसी प्रकार किसी सैर में उद्दिष्ट भाव के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का अर्थ व्यंजित होता हो, उसे उस वस्तु की जिला कहते हैं जैसे एक सैर में पक्षी की जिला का उदाहरण देखिये :—

तज दये तमोर दाँतन मिस्सी नाधारी
अँसुआ प्रवाह नैनन से बहत पनारी
काजर दृगन बिसारी बेनी न समारी
नन्द लाल बिना ऊधौ जा दशा हमारी

प्रत्येक चरण में किसी पक्षी का नाम है जैसे पहले चरण में मोर दूसरे में सुआ तीसरे में बैनी तथा चौथे में लाल पक्षी व्यंजित होता है। इसी प्रकार आभूषण के जिला का उदाहरण देखिये :—

तजबीज श्याम सुन्दर सैं प्रीत लगाई
कपटी कड़े कठोर कुटिल कुँवर कन्हाई
जोड़ी मिली बराबर ऊधो से सुलाई
कुबजा से संग लाद लई बेसरमाई

इसी प्रकार पूरी सैर में कोई न कोई आभूषण जुड़ा हुआ है। पहले चरण में बीज, दूसरे में कड़े, तीसरे में बराबर और चौथे में बेसर। ये बुन्देली आभूषणों के नाम है।

इसी प्रकार से व्यास जी ने चमत्कार के लिये कूट छन्द भी लिखे हे, जिनमें लता पक्ष भी आता है, जिसे यहाँ लतापक्ष कहते है। लता पक्ष की एक फाग का उदाहरण देखिये—

चल तोंये खगपति-पती बुलावें, सिन्धु सुतासें कावें।
रवि तनया तट गगन झपट कर सुरपति-पति अँकुलावें।
गिरिपति तनया तापति को अरि, तुमबिन उनें सतावें।
गिरधीपति भूषण ता भूषण वाहन देव मिलावें।
नृप सान्तनु-तिरिया गंगाधर लतापक्ष दरसावें।

सखियाँ राधिका से कहती हैं कि तुम्हें भगवान कृष्ण बुलाते हैं। तेरे बिना उन्हें विरह वेदना हो रही है। शंकर-पार्वती तुम्हें उनसे मिलायें, ऐसी कामना करती हैं। शब्दार्थ के नाते से इस प्रकार अर्थ बनता है—खगपति गरुड़ और गरुण के पति विष्णु अर्थात् कृष्ण और सिन्धुसुता लक्ष्मी अथवा राधिका, रवितनया = जमना और सुरपति = इन्द्र उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण गिरिपति-तनया = पार्वती, उसके पति शंकर उनका अरि कामदेव उनको अर्थात् कृष्ण को सता रहा है। गिरिपति = शंकर जी उनका भूषण सर्प का आभूषण मणि उसे मन में पढ़कर शीघ्र ही श्री कृष्ण के मन से मिलाने का काम यह वाहन करे। इस प्रकार एक दूसरे के क्रम-नाते से शब्द बनते जाते हैं और उन्हें जोड़कर उद्दिष्ट अर्थ व्यंजित होता है।

इस प्रकार व्यास जी ने विविध विषयों की हजारों सैरें लिखकर इस क्षेत्र में सैर साहित्य को प्रतिष्ठित किया। उनके अखाड़े का बोलबाला छतरपुर मऊरानीपुर, झाँसी बिजावर, जबलपुर, चरखारी इत्यादि स्थानों में है। व्यास जी के विविध साहित्य में रीति काव्य का छिड़काव और रीति परम्पराओं का प्रभाव यत्र-तत्र अंकित है। इसकी बानगी प्रस्तुत की गई है जो व्यास जी की शैली से परिचित कराने के लिये पर्याप्त है।

—एडवोकेट, छतरपुर, म० प्र०

बुन्देली फाग-साहित्य में ख्यालीराम का योगदान

—डा० हरगोविन्द सिंह

•

बुन्देली फाग-साहित्य को समृद्ध करने वाले कवियों में ईसुरी, गंगाधर तथा ख्याली—इन तीन नामों ने लोकमानस पर अपनी अमिट छाप अंकित कर दी है। साहित्य महोपाध्याय पं० श्यामसुन्दर बादल ने अपनी शोधकृति 'बुन्देली का फाग-साहित्य' में इन तीनों को बृहत्त्रयी की संज्ञा दी है। वस्तुतः इस बृहत्त्रयी के अनूठे कविरत्न ख्यालीराम का कृतित्व सर्वप्रथम विद्वज्जनों के समक्ष व्यापक रूप से प्रकाश में लाने का श्रेय श्री बादल जी को ही है।

ख्यालीराम का जन्म विक्रम संवत् १६०६ के लगभग हमीरपुर जनपद के अन्तर्गत ग्राम-अकठोंहाँ में लोधी राजपूत परिवार में हुआ था। शिक्षा-दीक्षा और विवाह के उपरान्त ये रियासत बिजावर में थानेदार के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ के तत्कालीन नरेश श्री भानुप्रताप सिंह जी के दरबार में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया था :—

जात महालोधी हो, अवोधी सब भाँतन सां,
ठाकुर खिताबी जगतराजी के कहावें जू।
आपके सिपाही, खैरख्वाही साख-साखन की,
वंश विकटराय को प्रशंसा का बतावें जू।
ख्यालीराम नाम जो सनाम भाई-बंदन में,
सोई नाम आपऊ की सनद में लिखावें जू।
जौन हुक्म होय भूप भानुप्रताप जू कौ
रावरी कृपा सों सर्व पूरो कर लावें जू।

ज्ञातव्य है कि महाराजा छत्रसाल ने एक युद्ध में वीरतापूर्ण सहयोग देने के उपलक्ष्य में विकटराय लोधी को ठाकुर साहब की उपाधि दी थी तथा अपने दरबार में बैठने के लिए इन्हें राजवंश की बराबरी का स्थान दिया था। कवि ख्यालीराम इन्हीं विकटराय के वंशज थे।

कविवर ईसुरी ने फाग-साहित्य में चौकड़िया छन्द को अमरत्व प्रदान किया, तो ख्यालीराम की विशेष देन यह रही कि इन्होंने मुकुट रूप में चूड़ामणि की भाँति एक दोहा जड़कर उस चौकड़िया का शीर्षभाग अलंकृत कर दिया। उदाहरण प्रस्तुत है—

राधा तैं बड़भागनी, कौन तपस्या कीन।
तीन लोक त्रिभुवन धनी, तैंनें बस कर लीन॥
है बड़भाग राधिका तेरो, पुन्न पुरातन केरो।
सिव सनकादि और ब्रह्मादिक जिनकौ चहत छहेरो।
सो माधव राधा के उर में बैठो लेत बसेरो।
सुन्दर स्याम रँगीले को मन राधा चिन को चेरो।
कवि ख्याली उनके का कमती, जिनकें स्याम कमेरो॥

ईसुरी ने अपने काव्य में सहज-स्वाभाविक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया, परन्तु ख्यालीराम की भाषा ठेठ बुन्देली नहीं, साहित्यिक बुन्देली कही जाएगी। हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य का इन्हें अच्छा ज्ञान था। फड़बाजी में इनके काव्यशास्त्रीय अध्ययन की धाक जमी रहती थी। नख-शिख वर्णन में कभी ये विपक्ष से प्रश्न करते—

तन में चौदह रतन तुम्हारे, लगे पिया खाँ प्यारे।
कौन अंग में कौन रहत हैं, कहियो न्यारे-न्यारे।

तो कभी वर्ण और रसों के सम्बन्ध में गुण, देवताओं आदि की जानकारी माँगते हुए ललकारते थे—

कौने गुन कौ कौन देवता, का फल के अधिकारी।
कवि ख्याली पिंगल बिन कविता करै सो पगला भारी।

इसी क्रम में नायिका-भेद-सम्बन्धी एक प्रश्न का उदाहरण और देखिए—

नहिं वियोग, नहिं सौत घर, नहीं ग्रहा बलवन्त।
वह होत कस दूबरी, लागें ललित बसन्त॥
आली नहिँ वियोग पिय केरो, मलिन भओ तन तेरो।
सुख-सम्पत सब ग्रहा बली हैं, नहीं विधाता डेरो।
ऐसी ललित बसन्त अवाई, स्रवत समीर छहेरो।
ख्यालीराम नायिका को दुख कविजन करो निबेरो॥

विदग्ध जन ही इस तथ्य को समझ सकते हैं कि यह नायिका परकीया है और इसका संकेत-स्थल नष्ट हो गया है ।

ख्यालीराम की प्रतिभा बहुमुखी थी । ज्योतिष का ज्ञान भी इनकी रचनाओं से व्यक्त होता है, देखिए :—

जग में बारा रासें जानों, जोतिस मत खाँ मानों ।
कर्क मीन बृश्चीक रास में बिप्र बरन पहचानों ।
कन्या मकर और वृष इनमें बैस्य बरन कर छानों ।
मेख, सिंह, धन रास बास में सो छत्री सनमानों ।
कुंभ तुला अरु मिथुन जो ख्याली सोई सूद्र बखानों ।।

यद्यपि इनके काव्य में कलापक्ष की ही प्रधानता है, तथापि भाव पक्ष निर्जीव नहीं होने पाया । परिवार में ही किसी असमर्थ को आखेट बनाने वाली लक्षिता परकीया पर किया गया तीखा व्यंग्य देखिए :—

अपने घरइ में घरुआ करतीं, बाहर पाँव न धरतीं ।
है बन्दूक जोग नाहर के, खरै काए खाँ मरतीं ।
बाने बाँध सिपाहिन केरे, अब काए खाँ डरतीं ।
ख्यालीराम उजारै जाकै का कुदवन खाँ चरतीं ।।

परन्तु फागुन के महीने में कुल शीलवती नारी को वे अपना सत्परामर्श इन शब्दों में देते हैं :—

घर में बने अदब में रानें, का काऊ सें कानें ।
इक तौ चाल कुचाल चलत औ दूजे हैं फगवानें ।
दोरें दायँ फिरत गुंडन की, तुमें देख गर्रानें ।
कवि ख्याली खेलन के बाने, बाँदें ता का कानें ।।

किसी निष्कलंक पर चरित्र-सम्बन्धी झूठा आरोप लगा दिया गया है, उसका मनोबल जागृत करते हुए सुकवि कहता है:—

अनुवाँ का भओजात लगाएँ, बिना भेद के पाएँ ।
किसक मिसक खाँसी और खुर्रा, ए नँईं छिपत छिपाएँ ।
उड़त फिरत दुरगंध दूर सें जो कोउ लासुन खाएँ ।
ख्याली चन्द होय ना मैलौ, का भओ धूर उड़ाएँ ।।

ख्यालीराम की रचनाओं में अलंकारों की छटा देखते ही बनती है, साथ ही कल्पना की मौलिकता अपना अलग चमत्कार दिखाती है । एक फाग द्रष्टव्य है, जिसमें मृगछौने उलटे शिकारी के ही पीछे पड़ गए हैं :—

नैना अलबेली आली के, हँस हेरनवाली के ।
छरकत जात, छरा-से छूटत, छौना करसाली के ।
लैकैं जाय बोर दए रँग में, कंज पत्र लाली के ।
ख्यालीराम परे दृग दोऊ पीछें बनमाली के ।।

उक्त फाग में अनुप्रास, उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट हैं । अब कुछ पंक्तियों में प्रतीप और व्यतिरेक की झाँकी देखिए—

हेरन खड़गधार से पैनी, देखत भइ बेचैनी ।
मीन मलीन, दीन गति खंजन, गंजन मद मृगनैनी ।

× × ×

गति खाँ गजपति देख लजाने, मृगपति बनें पराने ।

बाजार में तौलने का धंधा करने वाले व्यक्ति को बुन्देली में, 'बया' कहा जाता है । एक फाग में नेत्रों के लिए बया का चमत्कारपूर्ण रूपक इस प्रकार बाँधा गया है—

नेह नगर में दृग बया, नौखे प्रगटे आय ।
दो मन कौ कर एक मन, देत भाव ठहराय ।।
नौखे प्रगटे नेह नगर में, नैन बया इत घर में ।
दो मन कौ कर देत एक मन, ऐसी तौलत कर में ।
देत भाव ठहराब जतन सें राखत नहीं झगर में ।।
मालधनी-गाहक कवि ख्याली लेत लाभ पल भर में ।।

नायिकाओं के गुदना और तिल के वर्णन में उत्प्रेक्षा तथा सन्देह अलंकार के मनोरम प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलते हैं—

गुदना गोरे गाल पै सोहै, ताकी उपमा को है ।
ज्यों मयंक परजंक बिछाकें अरसी सुमन परो है ।

× × ×

तिलकी परन तिलन सें हलकी, बाएँ गाल पै झलकी ।
मानों चुई चन्द के ऊपर बुन्दी जमना-जल की ।

× × ×

गुदना लसत भौंह बिच बाँकौ, परत चन्द्र में टाँकौ ।
कै तौ परो सेज के ऊपर सोबै कन्त रमा कौ ।
गरल कंठ लै आन बिराजौ कै तौ पती उमा कौ ।
कै तौ गोद लिएँ ससि बुध खाँ कै तौ नग पन्ना कौ ।
कवि ख्याली लग जाय नजर ना पट घूंघट तौ ढाँकौ ।।

नेत्रों की तुरंग से उपमा ग्वाल कवि और बिहारी लाल ने भी दी है, किन्तु उक्त दोनों की तुलना में ख्यालीराम की इस फाग में कहीं अधिक लालित्य आ गया है :—

तोरे तिय तुरंग-से नैना, लाज-लगाम लगै ना।
माया मन मजबूत से मोहरा, जेरबन्द जिनकें ना।
चार चारु जीनाचतुराई, तंग तरुनाई कसें ना।
घूंघट घुड़सारन सें काढ़े कूंदत फुंदक फुंदैना।
कवि ख्याली आली वा छोड़ो, गलियन छैल खुंदै ना॥

इनके कृतित्व पर रीतिकालीन परम्परा का गहरा प्रभाव है। राधाकृष्ण की प्रणय-लीलाएँ, बिरह-वर्णन, गोपी-उद्धव संवाद आदि सभी विषय इनकी फागों में मुखरित हुए हैं। आभूषणों के चित्रण में छूटा की छवि देखिए :—

छूटा गोरे गरे बैजानों, दूरइ सें पहचानों।
मानों लाप हरीरी चोली रँग में जात समानों।
ऐसौ पहिर जगत जीतें खाँ बाँधो तैनें बानों।
ख्यालीराम राधिका तुम पै स्यामलिया बैहानों॥

प्रेम-व्यापार में अदालती कार्यवाही का रूपक इनकी उद्भावनाओं की मौलिकता का अच्छा उदाहरण है—

तोरी बेइंसाफी आँसी, सुनों राधिका साँसी।
कायम करी रूप-रियासत में अदा-अदालत खासी।
पठवा दए नैन के सम्मन, चितवन के चपरासी।
मन-मुलजिम कर लओ कैद में हँसी हँतकड़ी गाँसी।
कवि ख्याली लेगुना लगा दई दफा तीन सौ ब्यासी॥

अधिक लोकप्रियता के कारण इनकी कुछ फागें ईसुरी की छाप के साथ चली पड़ी हैं। उक्त भाग के साथ भी ऐसा ही हुआ है। किन्तु इसी शैली में रची हुई इनकी और भी फागें हैं, जो इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि बुन्देली फाग सहित्य की उक्त उद्भावना ख्यालीराम की ही देन है, देखिए—

१. आवत ग्वाल गमारी करकैं, गेह हमारे अरकें।
नालिस श्री वृषभानु सुता सें करबी जाय सम्हर कें।
तहकीकात करावी हालउँ, तनक न रहबी डर कें।
दफा तीन सौ सैंतालिस की काररवाई करकें।
ख्याली सेवा करने परिहै राधा कौं मन भरकें।

२. नाहक छेड़त गैल समलिया, साख-बिसाखा ललिया।
श्री वृषभानु-सुता महरानी राज त्रिलोकी अलिया।

कट गओ सम्मन, तुरत पकर कें मँगा लओ छलबलिया।
दफा तीन सौ सैंतालिस में राय हुकम फैसलिया।
ख्याली स्याम राधिका जी की झारौ जाय महलिया॥

फाग की केवल एक पंक्ति में नायक पर घड़ों पानी उँडेल देने वाला सीधा सरल प्रहार देखिए—

कासें आए छैल अलस्यानें, जान लई का कानें।

नायिकाओं के क्रिया-कलापों के मार्मिक चित्रण ख्यालीराम की फागों में मिलते हैं। एक मध्या नायिका किस प्रकार प्रियतम को परामर्श दे रही है, सुनिए—

रजनी बीत गई सुन सइयाँ, भोर भए निस नइयाँ।
दीपक जोत मलीन भई है, बिरलइ लखत तरइयाँ।
उतरी ननद-सास महलन सें आहट भइ अँगनइयाँ।
मोतिन माल गरें सीरी-सी, पीरी मुख बिगसइयाँ।
ख्याली स्याम सबेरौ हो गओ, बैठो जाय अथइयाँ॥

ख्यालीराम ने शृंगार रस में सरबोर होकर काव्य-रचना की है और रीतिकालीन कवि-कर्म के सभी गुण-दोष इनके कृतित्व में विद्यमान हैं। कहीं-कहीं पर तो अति शृंगारिकता अश्लीलता की सीमाएँ स्पर्श करने लगती है। फिर भी ज्ञान और भक्ति की सर्वथा उपेक्षा नहीं हुई प्रत्युत ऐसे प्रसंगों में जो कुछ भी इन्होंने लिखा, वह भी पर्याप्त मूल्यवान् है :—

कर्ता करम रेख से न्यारौ, ताकों नहीं बिसारौ।
भागवान के भाग संग में सब कोउ करत गुजारौ।
कवि ख्याली कितने के लानें रूँदत फिरत बयारौ।

× × × ×

कहा दोस करतार कौ, करम कुटिल गह बाँह।
करमहीन कलपत रहें, कलप वृक्ष की छाँह॥
कलपें कलपलता के नीचें, दोसी दोउ दृग मीचें।
मैले चीर नीर मैले में उज्ज्वल होत न फींचें।
और अन्त में कहते हैं, कि
इमली आम होय ना ख्याली, चाय दूध सें सींचें।

सुर-दुर्लभ मानव-शरीर का महत्त्व एक रूपक के माध्यम से इस प्रकार दर्शाया है :—

कीने दया-धरम के पाखे, सील-सपीलन राखे।
अतरारी प्यारी ममता की करम कुरए दो राखे।
मन मजबूत माया की म्यारी, माल मौज के आंके॥
छाए सील-छमा के छप्पर, खप्पर खैर नबाके।
कवि ख्याली ऐसे घर काजें सुर नेर मुनि अभिलाखें।

फागों के अतिरिक्त ख्यालीराम के कवित्त और छप्पय भी प्रसिद्ध है जो भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से सशक्त बन पड़े हैं। कवि को दिवंगत हुए आधी शताब्दी से अधिक का समय हो गया, परन्तु अभी तक रचनाओं का कोई संतोषजनक संकलन प्रकाशित नहीं हो सका। समुचित शोध के अभाव में इनका साहित्य क्रमशः लुप्त होता जा रहा है जो कुछ भी सामग्री शेष है, वह फाग गायकों के बीच जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी है। गायक इनकी रचनाओं पर गर्व करते है और जो भी सामग्री उनके पास है, उसे अपनी बहुमूल्य निधि मानकर आज भी कवि की इस उक्ति को सार्थक कर रहे है :—

'कवि ख्याली कौ कथन जतन सें रतन-पारखी गावै।'

—हिन्दी विभाग, ब्रह्मानंद महाविद्यालय,
राठ, उ० प्र०

बुन्देलखण्ड के अज्ञात कवि—फागकार

—वीरेन्द्र शर्मा कौशिक'

•

बुन्देलखण्ड अपनी लम्बी पौराणिक तथा ऐतिहासिक यात्रा के दौरान यजुर्होति, चेदि, वज्र, मत्स्य, दशार्ण, जैजाकभुक्ति, जुझारखण्ड, जुझौति, विंध्येलखण्ड और अब बुन्देलखण्ड आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। वर्तमान नाम बुन्देलखण्ड ३००-४०० वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं माना जा सकता। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस क्षेत्र का अधिकांश भाग विंध्याटवी में स्थित होने के कारण इसका नाम पहले विन्ध्येलखण्ड हुआ, जो आगे चल कर बुन्देलखण्ड में बदल गया। 'बुन्देखलखण्ड के इतिहास' में श्री गोरेलाल तिवारी ने लिखा है—"भारतवर्ष के मध्य-भाग में नर्मदा के उत्तर और जमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि-सौंदर्यालंकृत जो प्रदेश है, उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं। समय-समय पर इसका नाम दशार्ण, वज्र जैजाक-भुक्ति, जुझौति, जुझारखण्ड, विन्ध्येलखण्ड भी रहे हैं।"

सदैव से पिछड़ेपन का शिकार यह बुन्देलखण्ड सार्वजनिक उपेक्षाओं के बावजूद भी अपनी साहित्यिक और सांस्कृसिक परम्पराओं की अनुपम गौरव-गाथायें कहता रहा है। बुन्देलखण्ड की वीर-प्रसूत भूमि ने जहाँ आल्हा, ऊदल, महारानी लक्ष्मीबाई, महाराज छत्रसाल, चम्पतराय, हरदौल, चन्द्रशेखर आजाद, भगवानदास माहौर आदि वीरों को जहाँ अपनी गोद में खुल कर वीरता प्रदर्शित करने के अवसर दिया. वहाँ महर्षि वेद व्यास, तुलसीदास, केशवदास, मैथिलीशरण गुप्त, वृन्द्रावन लाल वर्मा, डा० राम कुमार वर्मा आदि महान साहित्यकारों को अपनी-अपनी कलम के चमत्कार दिखलाने का महान

गौरव प्रदान किया। बुन्देलखण्ड की साहित्यिक गरिमा अत्यधिक समृद्ध है। यहाँ मध्यकालीन साहित्य में निर्गुण और सगुण दोनों ही धाराओं की स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है। बुन्देलखण्ड के इन वीरों और कवि-साहित्यकारों ने ही इसे राष्ट्रीय गौरव दिलाया है। इस क्षेत्र का लोक-साहित्य भी अद्वितीय है, जिसकी लोक-विख्यात विधा-फाग के अज्ञात रचनाकारों की चर्चा करना ही इन पंक्तियों के लेखक का उद्देश्य है। यह तो सभी जानते हैं कि बुन्देलखण्ड के लोक-साहित्य की एक अति महत्वपूर्ण विधा को ही फाग कहते हैं—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी स्वीकार किया है—"ग्रामगीतों या लोकगीतों का एक विशेष भेद फाग साहित्य है।"

फाग या फाग साहित्य क्या है और कैसा है ? इन प्रश्नों का उत्तर तो विद्वज्जन समय-समय पर देते ही रहे हैं। आचार्य श्री श्याम सुन्दर बादल ने अपने महाग्रन्थ 'बुन्देली का फाग-साहित्य' के 'फाग-साहित्य किसे कहते हैं' शीर्षक अध्याय में बताया है। 'फल्गु' शब्द कालान्तर में क्रमशः रूपान्तरित होता हुआ फल्गुफग्गू-फागु-फाग बन गया। 'संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ' में फल्गु शब्द के कई अर्थ दिये है जैसे असार अल्प, गया (बिहार) की एक नदी, उत्सव होली का त्यौहार और बसन्तोत्सव। संस्कृत के फल्गु शब्द से बना यही फाग शब्द अब बसन्तोत्सव तथा रंग गुलाल की क्रीड़ा में रूढ़ि हो गया है।'''वास्तविकता यह है कि भारतीय संस्कृति में प्रत्येक उत्सव पर कोई न कोई गीत गाया जाता है जो उसी उत्सव के नाम से विख्यात हो जाता है। फाग शब्द भी उत्सव और गीत दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।'

'फाग' के रचनाकारों में सब से प्रथम नाम ईसुरी का आता है, जिन्हें चौकड़िया फाग का जन्मदाता ही कहा जाता है। गंगाधर व्यास, ख्यालीराम तथा खूबचन्द दूसरे रस-सिद्ध फाग गायक हैं, जिन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की है। इसके बाद तो अब अनेकों फागकार ऐसे हैं, जिन्होंने इस लोक प्रसिद्ध विधा-फाग के माध्यम से यश अर्जित किया है, जिनकी चर्चा भी यत्र-तत्र विभिन्न ग्रन्थों से मिल जाती है। आइए, हम यहाँ आपको कुछ ऐसे रस-सिद्ध फागकारों से मिलायें, जिन्होंने फाग-लेखन के क्षेत्र में अद्भुत प्रतिभा तथा लगन का परिचय दिया है, लेकिन साहित्य के अथाह सागर के एक निर्जन कोने में अज्ञात पड़े रह जाने के लिये विवश हैं। ऐसे फागकारों में सर्व प्रथम हम मऊरानीपुर के रससिद्ध फागकार स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद पुरोहित से आरम्भ करते हैं।

स्वर्गीय पं० दुर्गाप्रसाद पुरोहित का जन्म मऊरानीपुर (झाँसी) उ० प्र० के पं० हीरालाल पुरोहित के यहाँ सम्वत् १८८६-८७ के आस-पास हुआ था।

पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण वे अत्यधिक लाड़ले थे, किन्तु यह लाड़-प्यार उन्हें दीर्घकाल तक न मिल सका क्योंकि पिता का निधन अल्पायु में ही हो गया था। फलस्वरूप विद्यालयीन शिक्षा तो बीच में रुक ही गई, परिवार के भरण-पोषण का भार भी उनके कन्धों पर अल्पायु में ही आ पड़ा। जीविका का प्रमुख साधन कृषि और वस्त्र का व्यापार था। काव्य-लेखन में अभिरुचि होने से वे फागें, सैरें आदि लिखा करते थे। उस्ताद कहलाते थे और मूलचन्द नायक, बोदन सुनार, कल्याणदास तथा बिहारीलाल दुबे आदि इनके मुख्य चेले थे। छतरपुर के समकालीन फागकार श्री गंगाधर व्यास से प्रायः सैर-प्रतियोगितायें हुआ करती थीं। महाभारत तथा भागवत की कथाओं को दोहों में लिखा। नरकाव्य तथा किसी की प्रशंसा में साहित्य सृजन के वे घोर विरोधी थे। वे अक्सर कहा करते थे—

'नरकाव्य करै जो नर, सो नरकै जाय।'

सम्वत् १९६४ की श्रावण शुक्ला एकादशी को आपने स्वर्गारोहण किया। उनकी रचना का एक उदाहरण देखिये—

कर कृपा पारब्रह्म यह उर धारौ,
निजदास जानि स्वामी सब संकट टारौ।
सुर दुर्लभ नर तन प्रभु अब न बिसारौ,
निस वासर तुव चरनन में चित लगै हमारौ।
घर-घर में हौ व्यापक, का तुम्हें छिपावें,
त्रैलोक विदित सुजस वेद बरनत चारौ।
दुख दूर करौ दीन जान दया विचारौ,
अभिमानी अधम कुत्सित यह क्रोध निकारौ।
आवै न स्वप्न में समीप दूर निवारौ,
तुम करुणाकर किंकर मैं दीन तुम्हारौ।
अगनित अपार मेरे पातक न निहारौ,
जन जान नाथ भवनिधि ते पार उतारौ।
द्विज दुर्गा की भूल-चूक पाछैं डारौ॥

मऊरानीपुर (झाँसी) उ० प्र० से ही ७-८ मील दूर स्थित ग्राम-बम्होरी-कलाँ जिला टीकमगढ़ (म.प्र.) में २ अगस्त १९१० में जन्मे मुंशी दुर्गाप्रसाद खरे दूसरे हमारे ऐसे फागुकार हैं, जिन्हें बुन्देलखण्डवासी भूलते से जा रहे हैं। इनके पिता श्री गयाप्रसाद खरे ओरछा राज्य में तहसीलदार थे और पुत्र श्री जगदीश प्रसाद खरे आजकल छतरपुर में पुलिस दारोगा हैं। मिडिल

पास करने के बाद मुंशी जी ओरछा राज्य में शिक्षक हो गए और अपनी मृत्यु २८ अप्रैल १९५७ तक इसी पद को सुशोभित करते रहे। लम्बा कद, दुबली-पतली काया, गोलाकार चेहरा, ऊँचा मस्तक, गेहुआँ रंग आदि के सुन्दर समन्वय सहित ही इनके व्यक्तित्व और कवि का विकास हुआ था। बुन्देली भाषा में उन्होंने अनेक काव्य-रचनाओं का सृजन किया था, जिनमें सरसता, ओज, चमत्कार सभी कुछ विद्यमान रहता था। भाषा अत्यन्त मधुर और हृदय-स्पर्शी होती थी। फागु हो या भजन-कीर्तन उनकी हर रचना की यही विशेषता होती थी कि उनकी कलम से वह निकली नहीं कि सीधे आम जनता की जबान पर पहुँच जाती थी। ग्राम में स्कूल खुला नहीं कि मुंशी जी की फागु सबकी जबान पर अठखेलियाँ करने लगी—

'खुल गया मिडिल स्कूल, भई अति फूल
कि भवन बनाना... ...।

इसी प्रकार जब देश में विकास योजनाओं का प्रचलन हुआ तो उनकी यह फाग भी सबकी जबान पर थी—

—भली खुली योजना विकास है।
जिला जिला अंतरगत इक इक इजलास है॥

एक और फागु भी देखिये—

फागु बनाकर कहत हों, सुजन सुनो वरकाय।
कान मात लातुर जरा नहिं अक्षर पर आय॥
हर दम भज हर हर हर हर।
चरण कमल सर धर धर धर॥
हर दम भज मन कर सकल यतन।
रट रट भगवत तव तज तज तज॥

ऐसे ही हमारे तीसरे अविज्ञापित, अज्ञात एवं अप्रकाशित किन्तु अपने देश में खूब जाने-माने फागुकार हैं—पन्ना जिलान्तर्गत देवेन्द्रनगर के निकटवर्ती बड़ागाँव निवासी लगभग ६० वर्षीय श्री मलखान सिंह जी। इनके पिता श्री गिरवरसिंह गाँव के एक छोटे-मोटे खेतिहर किसान थे। इस कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा तो न के बराबर ही हुई पर छतरपुर के सहकारी सहायक पंजीयक श्री एस० एस० परिहार के सौजन्य से प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री मलखान सिंह जी बहुत ही उच्च कोटि की फागें लिखते और सस्वर उनका गायन भी करते हैं। वृद्धावस्था के कारण अब उनकी बनाई फागें उनके शिष्यगण गाते-फिरते हैं। श्री सिंह ने अपनी ३१ चौकड़िया फागों में सम्पूर्ण राम-कथा का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। यहाँ उनकी भागों के यह दो छन्द प्रस्तुत हैं—

इत तैं अब आगें नांगाओ, भलो आपनो चावो।
नाम तुमारो बड़ो सुनो तो, पै छोटो सो पावो॥
पाँव आज अब छोड़ने नैयां, पड़ो हमारो दाँवो।
कहें मलखान पकड़ दुश्मन खों, कान पकड़ टैलाओ॥

आज के छैला युवकों पर व्यंग्य-प्रहार भी देखिए—

जब से उठो सुराजी झण्डा, नाम लिखायें गुण्डा।
तुवक, तीर, तरवार, तमंचा, लाठी लंए औ झण्डा॥
औ चाहत करन राज जे हैं भीतऊ मुस्टण्डा।
गैन चलाऊत, नैन मटकाऊत जे चलें झुण्ड के झुण्डा॥
कहैं मलखानसिंह जे देखो लगन चाउत इन्हें फफुंडा।

इस प्रकार यदि ईमानदारी से बुन्देलखण्ड में खोज की जाय, तो ग्रामीण अंचलों में न जाने कितने ऐसे सरस फागुकार मिल जायेंगे जिनको कोई नहीं जानता। उनका एक अति लम्बा चिट्ठा प्रस्तुत किया जा सकता है। उन सबका विस्तृत विवरण इस संक्षिप्त आलेख में दे पाना संभव नहीं। महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर के प्राध्यापक डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त के सौजन्य से प्राप्त ऐसे फागुकारों की लम्बी सूची मेरे पास है जिसके नाम इस प्रकार हैं—

विन्द्रावन, रघुनाथ, रसिक गोविन्द, रामदीन, चतुरेस, रसिया, बृजलाल, मदनगोपाल, दामोदर, नत्थू, परसराम, दुजराज, रघुवर, दुजचगन, शिवदयाल, गजाधर, दशानंद, ठाकुरदास, सूर-श्याम और अयोध्या कोरी, पृथ्वीपुर, (टीकमगढ़) आदि।

अयोध्या कोरी की फागें इतनी सरस, सरल और प्रभावकारी होती हैं कि श्रोतागण आश्चर्य में डूबकर विचार करने लगते हैं कि यह अनपढ़ दृष्टिहीन फागुकार कैसे ऐसे सुन्दर-सरल, बोलचाल के शब्दों से गढ़कर अपनी फागें टंकता है। स्वयं लेखक ने पृथ्वीपुर में अध्यापन-काल के समय इस फागुकार की रचनाओं को सुना था पर दुर्भाग्य से इस आलेख में उसकी कोई फाग अभाव के कारण समाविष्ट न हो सकीं।

और अब इन सभी फागुकारों में से कुछ प्रमुखों की श्रेष्ठ फागों को ही प्रस्तुत कर सकूंगा—

विन्द्रावन—

वसंत

रितुराज साज दल चढ़ धाये। न बलम विदेशी घर आये
ले गोनो घर में बैठारों अपुन विदेसैं जा छाये॥
तलफत रहें सेज के ऊपर बारी उमर में तरसाये॥
विन्द्रावन कोऊ जस कर लेवे जाय समलिये समझाये॥

कैसी मधुर पीड़ा है इन पंक्तियों में नायिका की जिस पर कोई भी ऐहसान कर लें, यदि उसके सांवलिया 'प्रिय' को समझाकर उसके पास ले आये। बृजलाल—

परदेशी ग्रह आ गये, भई विरहन सुखमंत।
अनभावन भावन भये, भैरी हमें बसंत॥
विरहिन लगी बसंत बनावन, ग्रह आये मनभावन॥
लागी सजन अभूसन भूखन बसन सुगंध बसावन॥
कोकिल कीर भीर भोरन की मोदन सुख दरसावन॥
मिल ब्रजलाल आस भई पूरी अबरंग धूर उड़ावन॥

बसन्त में नायिका के पिय-मिलन की हार्दिक प्रसन्नता के बाद अब आइए मिलिए रसिया की इस नायिका से—

सेंदुर लाल भाल पै सोहे बैंदा लाल लसो है॥
लाल कपोल लाल है नैना डोरा लाल खिचो है॥
लालई लाल कुचन बिच रेखा लाल भराव भरो है॥
रसिया लाल लाल है पलका संग लाल लपटो है॥

अब जरा परसराम जी की नायिका पर भी दृष्टिपात कर लें। बिरह-व्याकुल इस नायिका की पीड़ा का कैसा सटीक, सरस और सुमनोहर चित्रण फागुकार ने बारहमासा के अन्तर्गत किया है—

अबै लों आये न प्रीतम प्यारे। दोऊ नैनन के तारे॥
मधु में मरी जरी वैसखयां जेठ मदन तन जारे॥
आसा असाढ़ लगी सांवन लों भादों नीर अपारे॥
निरमल नीर कुंवार कातिक में दीपक वार संभारे॥
अगहन होत अंदेश पूस में गाँव परत तुसारे॥
परसराम फागुन में मिल गये नेही नंद दुलारे॥

तुम बिन तरसें प्रान प्यारे। दोऊ नैन हमारे॥
चैत भई चिंता बैसखवां चले आह के नारे॥
जेठ जराय असढ़वां आसा सावन झूला डारै॥
भादों नीर कुंवार कातिक में विपुन गगन भये तारै॥
अगहन होत अंदेस श्याम बिन, अंगुरन दिन गिन डारै॥
पूसे परत सरदी माहों में, मकर महा तन गारै॥
परसराम फागुन में खेली फाग श्याम घर आरे॥

हिन्दी प्रवक्ता
१६४/२, जवाहर मार्ग,
छतरपुर, म० प्र०

बुन्देली फागन में भरे भाव

—डॉ० के. एल. वर्मा. 'बिन्दु'

•

जीवन में जोबन के दिना गीरब के दिना कुआउतै। रितुअन में फागुन को महइना सोऊ ऊसांई मद-मस्ती को महइना कओ जातै। ईके लगतनई आम बौराउन लगत; फसल गदराउन लगत, छेवलौ को फूला फूलो उचाई पै मनई मन मुस्काउन लगत, सेंमर उगरारो गुलाल सो लगाउन लगत, सरसों सोऊ पीरौ पियराउन लगत, बटरा औ ममरी आखें मिचकाउन लगत, मटर के दानें चोली तनाँउन लगत. कामदेव कामिन में पीरा सरसाउन लगत, गोरी, होरी में हुरियारिन सी हो-हो कें माथे पै हरियल बूंदा चमकाउन लगत, टुंइयाँ की लाल मुइयां पै सुअना पतरी नुकीली चौंच चलाउन लगत। हुरियारे होरी के होकें हुरदंगा, रंग-रस की धारा बुआउन लगत, ताल किरतुआ में केसर घुराउँन लगत। महुबे को आला-ऊदल को पानूदार पानूं जो सांसऊं में होरी को रंग-गुलाल अम्बर में उडाउँन लगत। कायेकै इतै मदनोत्सव की मार नें महोत्सव खौ इतई रचावतो, नर औ नारी खों सिरस्टी-सिरजन के लानें, आँखन की बातैं काबे के काजैं, खूबई ललचावतो ऊकी यादन की याद राखे खों जौ नगर जबई सें महुबो कुआवतो। राजा चन्देलन नें अपनें ई जस खों नगर-नगर डगर-डगर ताल और बावरी बनवा भरावतो। कला-कारन नें कर-कर कलाकारी, नारी खों पथरन पै टाँकी सें टाँक दओ मूरत सलौनी खों मूरत अनहोनो कर सांसऊ में इतै-उतै सबरै खों आँक दओ, असरीरी काम औ दुलइया रति खों खजुराहो के मन्दिर पै गढ़-गढ़ कें रांज दओ। धन्य है ऊ कला, जो तला सी भरी दिखात। पथरा निरजीबन में पिरान फूंक रूप को काजर सो आंज दओ।

नचत बेड़नी दुलक पै जिउवरा सुलगत आग ।
गाबे बारौ गाए जो, राग कुआउत फाग ।।

होरी की झाँक औ कजरारी आँख के सुलगतनई ढुलकिया गुमक उठत, नगरिया घुमक उठत, मजीरा खनक उठत, चमीटा चटक उठत, नचवेवारी दूनर हो-होकें मटक उठत ई फाग के बोलन पै ।

जो कऊँ छैल छला हो जाते परे उँगरिअन राते ।
मौ पौंछत गालन खों लगते, कजरा देत दिखाते ।
घरी-घरी घूंघट खोलत में नजर के सामैं राते ।
मैं चाहत ती लख में बिदते, हात जई खों जाते ।
'ईसुर' दूर दरस के लानें, ऐसे काय ललाते ।

बुन्देली नायिका छलिया छबीले छैला खों, छला बनाकें पोरा में पिरोउन चाउत, गालन खों छुआ कें, लालन खों करकें राखें चाउत । काय कै करके कौ सुक अनौखोई होतै, ई करके के सुक के लानें सेक्सपिअर नें सोई कई कै कजंत को दारै हम मानुस न होकें उनके हाँतन के दस्ताने होते, तौ उनके गालन खों गरम तौ करत राते । Had I been gloves to rest on those cheeks. जई भाउन खो रसखान जू नें सोई कओ तो कै कजंत गोकुल के बछरा, ककरा, पथरा होते, तो जीवन धन्य हो जातौ । कै बुन्देली हुरियारौ हुरियारिन के जुआब मे कन लगत कै कजंत बे छला बनाउन चाउतीं, तौ हम सोई उनके कन्नफूल की साँकरें बनकें उनके गालन पै रुरकन चाउतै ।

साँकर कन्नफूल की होते इन मुतिअन के कोते ।
बैठत-उठत निगत निउरत में, परे गाल पै सोते ।
राते लगे माँग के नैचें, अंग-अंग सब जोते ।
'ईसुर' इन खों देख-देख कें, सबरे जेवर रोते ।

आसा भरी भावउन की फाग खों सुनकें, मनई-मन, मन भरी बातन खों गुनकें, अन्तस की पीरा खों, भाउन भरे हीरा खों, तरसावे के लानें, मन की पीर मिटाबे चानें, जेई बोल युबती के औठन पै सरमानें, पै औंठ खुलई तौ गए—

प्रीतम प्रीत लगाए कें, बसन दूर जिन जाव ।
बसौ हमाई नागरी, सौ दरसन दै दै जाव ।।
नजर सें टारे न टरी मोरे बालमा ।

दबा करत-करत रोग बढ़ई तौ गओ, जिउवरा को धर-धरा ढुरकई तौ गओ, बिवसता फूट परी, दरद की दरदीली पिचकारी छूट परी—

आँगन सूकै सूकनौ, बन सूकै कचनार ।
गोरी सूकै मायकें, हीन पुरुष की नार ।।
हमें सुक नइयाँ सासरे आए कौ ।

जिन्दगी जोबन में जोबन की रंग-रस भोगन में जई भाउन की फाग देखिए—

नई गोरी नए बालमा, नई होरी की झाँक ।
ऐसी होरी दागिओ' तोरे कुले न आबै आँच ।
समर कें यारी करो मोरे बालमा...।

नारी की नारियत्व, ममत्व में रात, ममत्व अपनत्व में समात । कबै ? जबै तिरिया साउन की बदरी सी रस बरसाउत, गोदी को ललना किलकारी सें अचरा में हलचल मचाउत । "तिरिया सुहानी रे तबही लगे ललना खेले पौंर की दौर ।"

जोऊ तौ जिन्दगी कौ सार कुआउत, कै एकतौ हुरियारिन रंग में रँगी, काऊ के नेव में पगी, कनेर कैसी डार, फागुन फगुआ बयार, अड़ियन खों मटकाउत, कमरिया दूनर कर लचकाउत, हरीरो बूंदा मों चमकाउत, नजरिया दुन्टन सें घुमाउत, झूमत हाती कैसौ छउआ, आरई चलो रजउआ...नई...नई कात...आखन कौ गैरो कजरा कर रओ घात, गा-गा-कें फाग आदो जीवन इठलात—

मो पै रंगा न डारो संवरिया, मै तौ ऊसेंई अतर में डूबी लला ।
जो सुन पैहैं ससुरा मोरे, आउन न दैहें बखरिया लला ।
जो सुन पैहें सइयाँ हमारे, सोउन न देहै सिजरिया लला ! मो पै .. ।

बुन्देली युवती फागुन की फागन में, केसर की क्यारिन में, मौज-मस्ती के बागन में, रंग-रस के रसीले रागन में, ऐसी डूबी रात कै जैसें अतर में डूबी होय । जे ई तौ ई बुन्देलखण्ड की अनहोनी बात आय, काय कें इतै फागुन कौ मइना आग लगाबै बारौ होतै । किनके लानें ? खासतौर सें उनके लानें जीकी जनी-मान्स नई होतै । बुन्देली के पैले कवि जगनिक जू नै कई कै—

रंडुआ रोवैं रे फागुन में, सुन-सुन बिछियन की झन्कार ।
छाती नाग काम कौ लोटै बजबै पैजनिया ठन्कार ।

बुन्देली तरुनी हिन्नी सी किन्नी काटत, गलियन में गैलारन खों भरमाउत, पैजना ठनकाउत, ककरा बजाउत, कढ़ई तौ जात नाँय की माँय, सो ऐसैं लगत कै जैसें बिबस बिखलूपत, बेचारे गरीबन खों, काम कौ महीपत अपने कारन्दन सें सताउत, कसकान भरे ककरन सें तरसाउत, पिरान पेरत होय—

चलतन परत पैजना छनके, पाउन गोरी धन के ।
सुनतन रोम-रोम उठ आउत, धीरज रात न तन के ।
छूटे फिरत गैल-खोरन में, सुर मुखतार मदन के ।
'ईसुर' कौन कसाइन डारे, जे ककरा कसकन के ।।

बयसन्धि की बबाल, सोऊ करत कमाल, किसोर औ जोबन की उरजैलू साल, जई सें कभऊँ बचन खुलत जात, रंग-रस चंचलता आँखन में घुलत जात, किसोरी बचकानी बातैं, जोबन-देरी पै हरकतैं करत जात, लाज को परदा अपने आपई हटत जात, काय कै आँखन को कजरा चुलबुलाउन लगत, हाँतन को गजरा कोरी कलइया सें जूड़े पै चढ़-चढ़ कुलबुलाउन लगत, जिउरा सोऊ अनलिखे भाउन खों बांच-बांच सोर मचाउन लगत, पिरीत पिरेम के रीते घट, घाट-घाट, बाट-बाट, बाट जुराउन लगत—

वे दिन गौनें के कब आवैं, जब हम ससुरें जावैं ।
बारे बलम लिवउआ होकें, डोला संग सजावैं ।
गा-गा-गुइयाँ गाँठ जोर कें, दोरे लौ पौंचावैं ।
हाँते लगा सास ननदी के, चरनन सीस नवावैं ।
'ईसुर' कबै फलाने जू की, दुलहिन टेर कुआवैं ।

ई फाग में, गाँठ जोर कें, हाँते लगा कें फलानें जू की दुलइया कुआकैं, कैऊ बाक्यन में बुन्देली संस्किरती विहँसत लगत, इतै के संस्कारन कौ चित्र, चित्र सौ खिचन लगत, जेई तौ बिसेस, बिसेसता कुआउतै इनन की पै भइया—

मन चाऔ का मिलो काउ खों अनचाऔ सब पावैं ।
मिलवे कौ कऊँ गुन्त जुरै तौ, खुद नईं पी लुढ़कावैं ।।

बुन्देली तिरस्किरत तरुनी बेर-बेर टेर-टेर उनखों रिझाउतीं, नजर खों फेर-फेर सौ-सौ बेर, हेर-हेर मन भरमाउनीं, सौ लौं गिनती, हा-हा लौं बिनती कर-कर कें गाउतीं—

नजर भर हेरत काय नइयां,
हम तौ राजा बन की हिरनियाँ ।...बन की हिरनियाँ....नजर भर ..
तुम ठाकुर के लरका, तुपक तीर मारत काय नइयाँ ।

बुन्देलखण्ड में ऊ पुरुस की दसा तौ देखियई नईं जातै जीके दो-दो ठौ जनीं होतीं यँ—

नदी किनारें गोंदरा, लफ-लफ दूनर होय ।
दो जोरु की बालमा, सूक बहेरौ होय ।।
गुजारो कठिन भऔ ।

ईसें औरई जादां दरदीली, कसकीली, कसकन, जिउवरा की मसोस भरी मसकन इतै के गदराये जोवन की दुरदसा होत, जी कौ पती-पती तौ होत पै पती, पति राखन हार नईं कुआउतै, बस नारी के जोबन भरे जिउरा खों जरा-जरा, रुआउतै, पापी पैड़े परो, परो-परो सताउतै, लाज भरे बन्दन की गाठें खुलाउतै, न कैवे बारो सबई कछू कुआउतै—

सुगर नार ठंड़े पिया, रैन अकारथ जाय ।
मुरगा पापी बोल दे, जौ मुरदा उठ जाय ।।
करम के पाँसे परे मोरे बालमा...।

कै दूसरी जाँगा बुन्देली भूगोल को बोल, अपनें जिउरा खों टटोल बोलन लगत, दंडक बन की डाँग खों अपनी आदी-अदूरी माँग खों, जीमें उनकी पूरी नई परत, मन जबा और जुनरी के पीसवे में धर-धरा नईं धरत, ऊँचे अटन की इतै टटन में, और मउआ के लटन में बीद कें गाउन लगतीं जौ गावौ—

काय खों दई मोरे राम, डँगइया में काय खों दई मोरे राम ।
एक तौ डंगइया में जुनरी कौ पीसबौ, दूजै लटन सें काम !

कै रंग-गुलाल उड़न लगत, झाँझ सोऊ वजन लगत, बेड़नी फिरकी पै फिरकी दै-दै कै नचन लगत, स्वाँग भरौ आदमी दूनर हो नवन लगत । उताँय अटा पै ओट ठाड़ी तरुनी, अपने बचपन की करनी पै मरन लगन...यादव की तपन में जिउरा तपन लगत—

दिल डारैं अटा पै काय ठांड़ी दिल डारैं अटा पै...!
कै तोरी सास ननद दुख दीनों, कै तोरे सइयाँ नै दई गारी ।
मायके के यार दिखे सपनन में आई हिलोर फटी छाती ।

छाती टूंक-टूंक होकें फटन लगत, याद की गाँसी गसन लगत, बावरी बैरिन बात वरन लगत, जा दसा ओई जान सकत जीपै बीती होय—

आग लगी दरयाव में धुआँ न परगट होय ।
कै दिल जानैं आपनौ कै जा पै बीती होय ।।
काऊ की लगन कोऊ का जानै ?!

लगन लगे की बातई और होतै, जीकी जीसें लगन ऊ कोई में मगन होतै । जब कितऊँ आँखें जुर जातीं तौ, कछु नई, कै कै सब कछू काती राती—

अँखियाँ जब काऊ सें लगतीं, पके खता सी दगतीं ।

जेई आखै जबै इतै सैं हट-हट्टू कें परम पिता सें लगन लगतीं, तो इतै कौ सब असार दिखान लगत--

रसना राम कौ नाम नगीना, मन मुदरी में दीना

× × ×

दिन दिन देत देह खों दीपक, कभऊँ न होत मलीना ॥

इतनोई नई लोक कवि ईसुरी ने सुरग खों कबीर की घाँईं गासरो कओ, कायकें एक न एक दिना उतै तो जानेई परै ।

एक दिन होत सबई कौ गौनों होनो औ अनहोनो ।
जानै परत सासरें मइयाँ, बुरऔ लगै चाय नोंनो ॥

अन्त में जेई कैकें बन्द करत औं—

ऐसे भाउन की भरीं फागें इतै अनन्त ।
व्याकुल विन्दु आत्मा बिरहिन मिलो न कंत ॥

दिनांक
१७-२-८२

२/४ प्रोफेसर कलोनी,
छतरपुर, म.प्र.

बुन्देली फागों का शब्द सामर्थ्य

डॉ० छविनाथ तिवारी

•

किसी भी भाषा के शब्द-सामर्थ्य को जानने के लिए यह खोजना अत्यावश्यक होता है कि हम यह जान लें कि उसने आकर भाषा से कितनी पूंजी अधिग्रहीत की है, उसकी अपनी निजी पूंजी कितनी है, उसकी स्थानीय किंवा देसी संपदा कितनी है और कितना वह उधार लेकर अपना काम चला रही है। प्रकारान्तर से उसके शब्द भण्डार में तत्सम, अर्द्ध तत्सम, तद्भव, देसी और विदेशी शब्दों का क्या अनुपात है, यह जान लिया जाय !

साथ ही यह भी जान लिया जाय कि उस भाषा की पाचन शक्ति कितनी प्रबल है, उसके शब्द-निर्माण की कितनी सशक्त पद्धति है, एकार्थक, अनेकार्थक, सूक्ष्मार्थक, विशिष्टार्थक, ध्वनि अनुरणनमूलक, प्रतीक और बिम्ब विधायक शब्दों की संपदा कितनी है। क्षेत्रीय भाषा या उपभाषा के बोलचाल के शब्दों, वार्ताओं एवं लोक साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का अध्ययन किया जाय। आलोच्य भाषा बुन्देली की फागों के शब्द सामर्थ्य का अध्ययन यदि हम उक्त निकष पर करने बैठें, तो एक प्रदीर्घ निबंध लिखना अनिवार्य होगा, जिसके लिए यहाँ न तो अवकाश ही है और न औचित्य ।

अस्तु यहाँ हम बुन्देली फागों में प्रयुक्त प्रतीक शब्दावली के माध्यम से ही उसके शब्द सामर्थ्य को विवेचित करेंगे ।

काव्यकला में रूप और सौन्दर्य के साधक सामान्य तत्त्व कल्पना, बिम्ब और प्रतीक हैं। प्रतीक सृष्टि मनुष्य की चिन्तन-प्रणाली और क्रिया व्यापार का एक आवश्यक अंग है। सामान्य जनता की अपेक्षा, कवि और कलाकारों का प्रतीत सृजन के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। कारण यह है कि कवि जब स्वानुभूति के कुछ विशिष्ट अंशों को सामान्य अभिव्यक्ति के प्रचलित सांचों

में नहीं ढाल पाता है, तब उन अंशों को व्यंजित करने के लिए उसे प्रतीक चुनने पड़ते है। आशय यह है कि काव्य जगत् में अनुभूति के अकथनीय अंशों को प्रतीकविधान के द्वारा प्रेषणीय बनाया जाता है अर्थात् कविता में सूक्ष्म सौन्दर्य अथवा अकथनीय अनुभूति को व्यक्त करने के सर्वोत्तम माध्यम प्रतीक है। प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति भी यही अर्थ देती है—प्र+ईक् गतौ+पत्र या प्रकर्षेण नीयते गम्यते अर्थों यस्मात् तत् प्रतीकतम् अर्थात् जिससे विशेष अर्थ की अवगति या अनुमिति हो, वह प्रतीक है। 'साहित्य शब्द कोष' के पृष्ठ ४७१ पर प्रतीक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान, उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।' इस प्रकार प्रतीक कलाकार की अनुभूति के सम्प्रेषक के माध्यम होते हैं।

ऑगडन और रिचर्ड्स के अनुसार प्रतीकों के द्वारा व्यवस्थापन, आलेखन और संप्रेषण के कार्य संपन्न होते हैं। हमारी आलोच्य भाषा बुन्देली की फागों में कवियों ने प्रतीक शब्दावली के माध्यम से यही सब कार्य संपादित किए हैं—

> भौंरा जात पराये बागै, तोय लाज ना लागै।
> घर की कली कौन कम फूली, अन्तई लेत परागै॥

इस फाग में 'भौंरा' (भ्रमर) रसिक व्यक्ति का प्रतीक और 'कली' गृहणी की प्रतिरूपा बनकर उपस्थित है, जो परंपरागत प्रतीक का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रतीकों में अर्थ की अनिश्चितता, नमनीयता, अनेकार्थकता, आकर्षण, प्रभाव, कलात्मक बोध, मनोदशा की व्यंजकता, सहजानुभूति-प्रवणता, संवेदन प्रधानता, व्यपदेशात्मकता, व्यष्टि में समष्टि का संपोषण, अव्यक्त को व्यक्त करने की क्षमता तथा संदर्भ सापेक्षता आदि अनेक गुण पाये जाते हैं। बुन्देली की फागों में प्रयुक्त प्रतीकों में उक्त गुण प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। यहाँ हम प्रतीकों की उक्त गुणवत्ता एवं शक्ति का परिचय प्राप्त करेंगे—

अर्थ की व्यापकता—

> अंगरेजी परी गोरी गम खाने,
> कहाँ बने चौकी, कहाँ बने थाने।
> कहाँ जो बन गए जे जेलखाने॥

इस फाग में 'अंगरेजी परी' (अंग्रेजी शासनकाल में उत्पन्न आतंकमयी व्यवस्था का संकेत।) प्रतीक है, जो किसान द्वारा अपनी पत्नी को समझाया

गया है। इस एक शब्द से अंग्रेजों के चौमुखी प्रभाव और आतंक को प्रकट किया गया है। किसान की पत्नी उससे क्या अर्थ लेती है, यह अनिश्चित ही है। साथ ही अर्थ की नमनीयता और संदर्भ-सापेक्षता इस प्रतीक में समाविष्ट है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में इस प्रकार के शब्दों का अर्थ सन्दर्भ-सापेक्षता द्वारा समझा जा सकता है।

सूत्र सापेक्ष अर्थ—बुन्देली फागों विशेषकर 'ईसुरी' की फागों में कभी-कभी एक फाग में प्रतीक की अनेक इकाइयों का प्रयोग मिलता है, जिससे फाग का अर्थ प्रतीक-सूत्र-सापेक्ष हो जाता है, यथा—

> लागै नख-शिख से तन नीको, कुंअरि राधिका जी को।
> केहरि, कदली, श्रीफल, दाड़िम, गति मण्डल गज फीको॥
> आनंद कंद मंद मुसकैयां, गिरधर को मन जीको।
> ईसुर उड़त सुवास सुकृत की, शोभन धर को टीको॥

राधा के नखशिख सौन्दर्य वर्णन में केहरि (कमर), कदली (जंघाएं), श्रीफल (उरोज), दाड़िम (दंतावलि) गति मण्डल गज (गजगामिनी चाल) आदि प्रतीक सूत्र संगुफित हैं, जिनके सूत्रों को व्याख्यायित करने पर सौन्दर्य उद्योतित हो उठता है।

संदर्भ-सापेक्षता—अंगरेजी राज्य के साथ-साथ उसकी भाषा, वेशभूषा और संस्कृति भारतवर्ष में आ गई। बुन्देलखण्ड पर भी उसका प्रभाव पड़ा। बुन्देलखण्ड की राधा ने भी अपनी सेना सजायी—

> राधे सजी सखिन की पलटन, आप बनी लफटंटन।
> ललिता सूबेदार सलामी, देन लगी फरजंटन॥
> पथरकला सन सेन संवारी, बरदी पैरी बन ठन।
> राइट लेफ्ट मिचन नैनन की, खोलन खोल फिरंटन।
> 'ईसुर' कृष्णचंद मन व्याकुल, बनो रहो है घंटन॥

इस फाग में पलटन, लफटंटन, सूबेदार, सलामी, फरजंट, सेन, बरदी, राइटलेफ्ट आदि शब्द प्रतीकों के द्वारा सम्पूर्ण सैन्य संचालन की अर्थच्छटा सन्दर्भ सापेक्ष है।

अनिश्चयात्मकता या अर्थ का अनिश्चय—बुन्देली फाग रचयिताओं विशेष कर 'ईसुर' की फागों में प्रयुक्त एक ही प्रतीक का सुनिर्णीत अर्थ नहीं मिलता, बल्कि अलग अलग फागों में प्रयुक्त एक ही प्रतीक भिन्न-भिन्न अर्थ देता है और कभी-कभी ठीक विपरीत अर्थ देता है—यथा—'मधुकर या भौंरे' के प्रतीक को देखा जा सकता है, यह प्रतीक कहीं सच्चे प्रेमी के अर्थ में आया

है, तो कहीं रसिक और कहीं लंपट से अर्थ में। कहीं पति या स्वामी भाव में प्रयुक्त है, तो कहीं विरहोद्दीपक उपादान के रूप में।

भौंरा रुपै न एक कली पै, जो वृखभान लली पै।
जैसे पंथी पंथ चलत है डेरा करत गली पै॥

इस उद्धरण में भ्रमर 'लंपटता' का प्रतीक है।

भौंरा जात पराये बागे, तनक, लाज ना लागै।
घर की कली कौन कम फूली, काए न लेत परागे॥

में मोहाच्छन्न रसिक प्रेमी के रूप में प्रयुक्त हुआ है किन्तु इन पंक्तियों में—

जौ तन-बाग बलम कौ नीकौ, सिंचौ सुहाग अमी कौ।
श्रीफल फर रह अंगिया भीतर मद रस चुअत लली कौ॥
लेत पराग अधर पै 'मधुकर' बिकसी कमल कली कौ।
ईसुर कात रखायें रइओ, छुयै न छैल गली कौ॥

मधुकर को पति के प्रतीक रूप में चित्रित करके उसे सावधान किया गया है। एक अन्य स्थान पर—

खाली परीं कृष्ण बिन कुंजै, वे मधुकर मा गुंजै।' में उल्लास और संयोग के सहकारी अर्थ में मधुकर का स्मरण किया गया है। सारांश यह है कि बुन्देली फागों की प्रतीक शब्दावली सन्दर्भ सापेक्षता के साथ-साथ अर्थ की अनिश्चयात्मकता रखती है।

एक ही भाव के व्यंजक अनेक प्रतीक स्वरूप उपमान—बुन्देली की फाग शब्दावली का यह वैशिष्ट्य है कि उसमें एक ही भाव की व्यंजना के लिए अनेक प्रतीकों को ग्रहण किया गया है, यथा—नैन या आंखों के लिए तरवार, बान, पिस्तौल, कसाई, शिकारी, अहेरी आदि प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं—

तरवार—कड़तन हनी नैन तरवारें, रजऊ ने अपनें द्वारें।
बान—छूटें नैन बान इन खौरन, तिरछीं भौंय मरोरन॥
पिस्तौल—आंखियाँ पिस्तौलें सी भरकें, मारत जात समर कें।
शिकारी—इनके अजब सिकारी नैना, छैल छरकते रैना।
अहेरन—मम तन चोट घालबे कौं भए तोरे नैन अहेरन॥

अथवा नेत्र सौन्दर्य सरोज, मृगसिसु, मीन, खंजन आदि परंपरागत प्रतीकों द्वारा व्यंजित कराया गया है। यथा—

लख तव नैनन की अरुनाई। गए सरोज छिपाई।
मृगसिसु निज अरि भय खाँ तजकें, बसे दूर बन जाई॥

चंचल अधिक मीन खंजन से उनई नें उपमा आई।
ईसुर इनकी कानौं बरनौं, नयनन सुन्दरताई॥

अनेकार्थी प्रतीक शब्द—'छाती या वक्षस्थल' शब्द प्रतीक बनकर साहचर्य संयोग से अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—यथा

(i) 'भोरई रजउ गामरें जानीं, हमें लगा लेओ छाती।' इस स्थल पर भेंट या आलिंगन या मिलन का लाक्षणिक अर्थ व्यंजित हो रहा है।

(ii) 'कइओ गौने जोग भई छाती, लिखौ बलम खां पाती।' यहाँ छाती 'उरोजों' की विकसित अवस्था की प्रतीक बन गई है।

(iii) 'जासों जरत रात है छाती, को है कौको माती।' इस पंक्ति में छाती '**हृदय**' का प्रतीक बनकर उपस्थित है।

(iv) 'तिन्नी तरें छुअत छाती हो, लगत पीक गई गालन' में छाती पुष्ट उरोज की प्रवाचिका बन गई है।

व्यष्टि में समष्टि का संपोषण—प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का संपोषण है, अर्थगत और व्यापारगत संश्लेषण शीलता के कारण प्रतीक 'एक' में 'अनेक' का संपोषण करता है, इस निकष पर ईसुरी की यह फाग ध्यातव्य है—

गोदौ गुदनन की गुदनारी, सबरी देह हमारी।
गालन पै गोबिन्द गोद दो, कर में कुंजबिहारी॥
बँइयन भौत भरौ बन माली, गरें धरौ गिरधारी।
आनंद कंद लेउ अँगिया में, माँग में लिखौ मुरारी॥
करया कोद कँरइयाँ ईसुर, गोद मुखन मनहारी॥

इस फाग में लिलहारी से अपने समस्त अंगों में कृष्ण के नाम गुदवाने का आग्रह है, किन्तु अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नाम—गाल पर गोबिन्द, कर में कुंजबिहारी, बांह पर बनमाली, गले में गिरधारी, अंगिया (वक्ष स्थल) में आनंद कंद, मांग में मुरारी करया (कमर) में करइयां (कर्त्तार) आदि लिखवाने के पीछे कितनी अर्थ वत्ता छिपी हुई है, इन नामों में निहित अर्थ छवि को जानने वाले ही समझ सकते हैं। जहाँ आंगिकता और वर्ण मैत्री का मणि कांचन योग इस प्रतीक योजना में बन पड़ा है, वहाँ व्यष्टि में समष्टि का संपोषण कर सकने में यह पूर्ण रूपेण सफल है। बिहारी का अधोलिखित दोहा भी उपर्युक्त अर्थ ध्वनित करता है—

मनमोहन सों मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंजबिहारी सों बिहरि, गिरधारी उर धारि।

अव्यक्त का व्यक्तीकरण—रहस्यवादी कवियों और संतों के काव्य में

हम जिन प्रतीक-शब्दों को पाते हैं, उनमें आध्यात्मिक अर्थवत्ता अधिक रहती है और ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नगण्य रहता है। हीगेल ने कहा भी है कि 'उत्कृष्ट प्रतीकों में संकेत और ऐन्द्रिय निवेदन के बीच समतोल रहता है अथवा आध्यात्मिक संकेत की अधिकता रहती है।' (दि फिलासफी आफ फाइन आर्ट्स, हीगेल, लंदन, १६२०, पृ० २०) अर्थात् अव्यक्त को व्यक्त करने की क्षमता रहती है। बुन्देली फागों की प्रतीक शब्दावली में भी अव्यक्त को व्यक्त करने का अद्भुत प्रयास हुआ है, यथा—

राखें मनपंछी ना रानें, इक दिन सब खाँ जानें।
ईसुर कई मान लो मोरी, लगी हाट उठ जानें॥

यहां मन पंछी (प्राण पखेरू—जीवात्मा) का पर्याय है, तो 'जानें' शब्द (महाप्रयाण) का प्रतीक है। 'लगी हाट उठ जानें' में संसार रूपी बाजार का समाप्त होना—कहा गया है। अथवा—'उड़ जा तोताराम, पिंजरा हो गए पुराने' में तोताराम (आत्मा) है और पुराने पिंजरा वृद्ध क्षीण शरीर के अर्थ में प्रयुक्त है।

इस प्रकार बुन्देली फाग काव्य में प्रयुक्त शब्दावली को देखने से पता चलता है कि बुन्देली की प्रतीक शब्द संरचना के अधोलिखित धरातल या स्तर मिलते हैं—

(१) शारीरिक या जैव—इस धरातल पर कार्य करने वाले प्रतीक प्रायः वेगोद्भेदक बिम्बों (Kinaesthetic images) से उपस्थित होते हैं और इनका संबंध किसी न किसी प्रकार के शारीरिक क्रिया व्यापार (जैसे—खाना, सोना, चलना, जगना, झूमना आदि) से अवश्य रहता है, इस तरह जिन बिम्बों में 'सक्रिय' ऐन्द्रियता की अधिकता रहती है, वे विकास पाकर शारीरिक वा जैव स्तर के प्रतीक बन जाते हैं, यथा—पेंड़ भरो (लेट लेटकर पाँव पड़ना), परकम्मा लगाउनीं (परिक्रमा लगाती) मुरगन में दई बाँग (सवेरा होना) अकथ कहानीं (रहस्यमयी कथा) गिरा गुलाँट (कबूतर की पलटी लगाना) आदि प्रतीक शब्दावली जैव स्तर की है, जो बुन्देली फागों में मिलती है। विस्तार भय से उदाहरण अधिक देना संभव नहीं है।

(२) प्रतीकों का सामाजिक स्तर—इस स्तर पर प्रतीक सामाजिक पारिवारिक-सामूहिक संबंधों के द्वारा अपना अर्थ संप्रेषित करते हैं—यथा 'इक दिन होत सबई कौ गौनों, होनों और अनहोनों' में 'गौना' शब्द सामाजिक-पारिवारिक क्रिया द्वारा महाप्रयाण का संकेत देता है। इसी प्रकार विदा, तिरिया, ससुरार, पीहर, मइकैं आदि इसी स्तर की प्रतीक शब्दावली है।

(३) प्रतीकों का भावात्मक स्तर—इस धरातल पर प्रतीक व्यक्ति के

मनोदेश से संबद्ध रहते हैं और भौतिक जगत की 'कठोरताओं से निरपेक्ष रहते हैं। ये प्रतीक उत्कृष्ट कला के नमूने होते हैं तथा—इनमें अर्थ की सुनिश्चितता के स्थान पर नमनीय अनेकार्थकता पायी जाती है। यथा 'रस की कली न भौंर जुठारी, धरै बलम ना बारी।' में 'रसकली' 'भौंर' अथवा—'सुगर भमानी, चली भमानी, राखन खाँ झांसी कौ पानी। अमर करन खों देस-कहानी।' में झांसी को पानी, देसकहानी आदि भावात्मक स्तर के श्रेष्ठ प्रतीक हैं।

बुन्देली फागों में प्रयुक्त प्रतीक शब्दावली की अर्थवत्ता तथा रचनात्मक धरातल के अवलोकन के उपरान्त उसके भेद या प्रकारों की चर्चा भी अप्रासंगिक न होगी—

(१) सार्वभौम प्रतीक—वे प्रतीक जिनके प्रति सभी देशों और सभी युगों में एक जैसी धारणा रहती है, सार्वभौम प्रतीक कहलाते हैं। यथा फूल (सुख-सुगंधि और प्रसन्न जीवन का प्रतीक है)

'कँहना के बेटी कोकिला फुल बीनन आइ।'

अथवा—वीर जवाहर जइ खाँ छोड़ी फूलन की सुख सइया।

(२) पारंपरिक प्रतीक—वे प्रतीक जो युग-युग से एक अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं—जैसे—पपीरा (चातक-उत्कृष्ट नैष्ठिक प्रेम का प्रतीक),

अमी (अमृत-अमरता और मिठास का प्रतीक), हंस (जीवात्मा) यथा—जो तन बाग बलम को नीकौ, सिंचौ सुहाग अमीं को। या—हंसा फिरैं विपत के मारैं, अपने देस बिना रे।

इन्हें हम एकोन्मुखी प्रतीक भी कह सकते हैं क्योंकि इनमें रूपकातिशयोक्ति के अप्रस्तुत जैसी अर्थ-निश्चयात्मकता रहती है।

(३) देशगत प्रतीक—कल्पवृक्ष, गंगा, कामधेनु, सांतिया (स्वस्तिक) आदि देशगत प्रतीक हैं जिनके पीछे एक लंबी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि संगुफित है—'सांतिया देइ धराइ' अथवा 'बिच गंगा बिच जमुना' आदि इसी कोटि की प्रतीक शब्दावली है!

(४) व्यक्तिगत प्रतीक या नवीन प्रतीक स्वरूप उपमान—अभिव्यक्ति की घिसी पिटी पद्धतियों और खिरे हुए प्रतीकों को छोड़कर जब कवि अपनी रचना को अधिक मार्मिक और प्रभावोत्पादक बनाना चाहता है, तब व्यक्तिगत प्रतीकों को गढ़ता है। इस नूतन सृष्टि में कवि की वैयक्तिकता और आत्मीयता के तरल स्पर्श के साथ-साथ युग प्रवृत्ति का असाधारण योग होता है। ऐसे प्रतीक कवि की अभिव्यक्ति को धार पर शान चढ़ाकर उसे और भी अधिक प्रभविष्णुता प्रदान करते हैं। बुंदेली के सर्वाधिक लोकप्रिय फाग रचयिता ईसुरी

ने 'रजउ' प्रतीक की ऐसी ही अवतारणा की है। छायावाद की 'सजनी' का तो अब जन्म हुआ है, उसके बहुत पहले 'सजनी' से भी कोमल और भावपूर्ण प्रतीक 'रजउ' की कल्पना ईसुरी ने की और उसका व्यवहार किया, उसे संबोधित करके तीन सौ साठ फागें लिख डाली जबकि ईसुरी के ही साक्ष्य पर सच यह है कि—

देखो 'रजउ' काउ नैं नैया, कौन बरन तन मैया !

अर्थात् 'रजउ' की सत्ता भावात्मक ही है।

उक्त भेदों के अतिरिक्त युग्पत प्रतीक, भावात्मक प्रतीक, सादृश्य निर्भर, साधर्म्य निर्भर, कलात्मक, पौराणिक, प्राकृतिक, अथवा निर्माण की दृष्टि से-संदर्भयुक्त, संघननशील, सर्वात्मवादी, रूढ़ तथा स्वच्छंद आदि अनेक भेद किए जा सकते है और बुंदेली फागो मे एतद् संबंधी शब्दावली ढूंढ़ी जा सकती है।

विस्ताराधिक्य के भय से हम निष्कर्षत: यही कह सकते है कि बुंदेली फागो में प्रतीक शब्दावली की एक मनोरम और सुदीर्घ परंपरा उपलब्ध है, जिससे यह तथ्य उद्घाटित होता है कि ये प्रतीक-शब्द संगीत, दर्शन, मूर्तिकला, चित्रकला, प्रकृति आदि विभिन्न क्षेत्रो से लिए गए है जिनमें हमारा लोकजीवन विविध रगो और रूपों मे प्रतिबिम्बित है—और बुंदेली एक ऐसी जीवन्त भाषा है, जिसमे सभी प्रकार के भावो, स्थितियों और आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करने की अपूर्व शब्द-सामर्थ्य विद्यमान है।

—दमोह (म० प्र०)

बुन्देली फागों की भाषा

—डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

•

फागों की भाषा उनका नादमय चित्र है, जिसका एक-एक शब्द अपने सहज एवं कलात्मक उभारों को सस्वर प्रकाशित करता चलता है। पैजनों की छनकार सी हृदय की पोर-पोर को आन्दोलित करती उनकी आनुप्रासिक गति, प्रत्येक स्वर का अपना हृत्कम्पन, स्वतन्त्र अंग भंगी एवं निश्छल सौन्दर्य सभी रस माधुरी के उज्जवल उच्छलन को भीतर न समेटे रख सकने के कारण छलका पड़ता है। जीवन की सहजता की यह सहज अभिव्यक्ति, आत्मीयता की स्वाभाविक गंध फागों की अपनी मौलिक विशेषता है। इसका श्रेय है फागकारों की अपनी विचारणा को, जो सोचने और बोलने की भाषा में एकतानता समोये हुए है। बुन्देली फागकार का सोचना भी बुन्देली का है और भाव प्रकाशन का माध्यम भी। कृत्रिमता से बहुत दूर। सहज भाषा और सहज भावाभिव्यक्ति के उपासक ईसुरी इसके अग्रगण्य हैं तथा गंगाधर और ख्यालीराम जैसे कुछ फागकार रीतिकालीन विचारधारा से प्रभावित बुन्देली के परिमार्जित व संस्कृतनिष्ठ रूप के पोषक। अन्य कवियों की भाषा भी यत्किंचित उनकी सोचने की भाषा से प्रभावित हुई है। फिर भी कुल मिलाकर फागों की भाषा का जो रूप संगठित हुआ है वह बुन्देली की साहित्यिकता का एक सहज ताना-बाना है।

किसी भी भाषा की मुख्य कसौटी उसका शब्द-भंडार, कहावतें-मुहावरे, क्रियापद, प्रत्यय एवं विभक्तियाँ तथा उसका सौष्ठव है। आइये फागों की भाषा के इन रूपों पर विचार करें।

शब्द भंडार :—

फागों की वैचारिकता तथा अभिव्यक्ति दोनों ही जनसामान्य के बीच की

वस्तु होने से उनमें तद्‌भव बहुल बोलचाल की भाषा को ही अधिक प्रश्रय मिला है। एक छन्द देखें :—

जो तुम छैल छला हो जाते,
परे उँगइयन राते।
मौं पोंछत गालन हों छूते, कजरा देत दिखाते।
घरी घरी घूँघट खोलन में, नजर सामने राते।
मन चाहीं लख में तुम बिदते, हांत जहां जब जाते।
ईसुर दूर दरस के लाने, ऐसें काये ललाते।

उक्त पंक्तियों में लगभग सभी शब्द तद्‌भव हैं। अव्यय, सर्वनाम, क्रियापद, छैल (छविल्ल > छइल), छल्ला (छल्लि), उँगइयन (अंगुलि > उँगरि + या), मों (मुख), गालन (गल्लः), कजरा (कज्जल), घरी (घटी > घड़ी), घूंघट (गुगुण्ठ > घूंघुट), सामने (सम्मुख > सामुह) मनचाही, लख (लक्ष्य), हांत हस्त > (हत्थ), दरस (दर्शन), ललाते (ललत्) आदि। फागों में तद्‌भव शब्दों की संख्या लगभग अस्सी प्रतिशत तक है। आडम्बरहीन सहज सौन्दर्य के उपासक इन तद्‌भव शब्दों का उत्स यद्यपि संस्कृत से है पर प्रकृति बुन्देली के अनुकूल। कुछ ने तो अपना अस्तित्व ही अलग खड़ा कर रखा है। यथा— 'मंजयाई' जिसका अर्थ देखी या भोगी है, मूल शब्द 'मध्य' से व्युत्पन्न। किन्तु प्रयोग की दृष्टि से इसकी बनावट ध्वनि तथा अर्थ अपने ढंग का है। ऐसे ही, अगताँ (अग्रतः) अनोई (अन्यायी), अगाने (आघ्राण), उजा (उचित), भमीरा (भ्रमर) आदि अनेक शब्दो को देखा जा सकता है, जो भाषा में अपनी अप्रतिम सहजता लिए देशज जैसे प्रतीत होते हैं।

इनके अतिरिक्त भाषा की सहजता और चित्रात्मकता के अन्य प्रमुख उपादान अनुकरणात्मक और देशज शब्द हैं जिनकी अर्थ ध्वननयुक्त ध्वनि भले ही साहित्यिक शब्दावली में अपना उचित स्थान न पा सके पर भाव सौन्दर्य और कला को अपनी संगीतात्मकता से अनुगुंजित अवश्य करती है—

1. मग में परत पैजना बाँके, चलतन होत छमाके।
2. लोयन के दोऊ कोयन लौं कर कटाच्छ छहरान लगे।
3. ……पवन चले झकझेला की।

पंक्तियों में प्रयुक्त 'छमाके' 'छहरान' 'और 'झकझेला शब्दों का नादात्मक सौन्दर्य वस्तुस्थिति को जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

फागकारों ने अपनी भाषा को आवश्यकतानुसार तत्सम शब्दावली से भी परिपोषित किया है और उसके अक्षय भंडार से शब्दों को चुना है। ऐसा बहुत कुछ सिद्धान्तों के प्रतिपादन, रूप चित्रण, अप्रस्तुत विधान, संस्कृत साहित्य के

प्रभाव या लतापक्षी जैसी फागों में कविकर्म की पराकाष्ठा निरूपण करने हेतु किया है। रूप चित्रण के संबंध में एक फाग देखें—

नीको अंग नंग नंग रंगनीको, रूप रमा रमनी कौ।
मृगी मीन मधुकर मद मोचन, लोचन लोंच अमी कौ।
नासा कीर कपोल कंठ गुर, कोकिल कल कमनी कौ।
कटि मृगपति लख रहत परायन, सुन्दरि गज गमनी कौ।
कवि ख्याली निसदिन गुन गावें, स्यामलिया सँगनी कौ॥

उक्त फाग में लगभग सभी शब्द तत्सम हैं किन्तु फागकार ने यहाँ भी सहजता और स्वाभाविकता के प्रयास में वर्ण मैत्री और वर्णसंगीत के साथ-साथ कुछ तत्सम शब्दों पर जहाँ अवकाश पाया है बुन्देली का रंग चढ़ाया है। अपनी पद्धति से कवि ने 'निक्त' को 'नीको', 'अंग', को 'अंग' 'रमणी' को 'रमनी', 'अमृत' को 'अमी', 'नासिका' को 'नासा', 'स्वर' को 'सुर', 'कमनीय' को 'कमनी', 'परायण' को 'परायन', 'गामिनी' को 'गमनी', 'निशि दिन' को 'निस दिन', 'गुण' को 'गुन', 'श्यामलिया' को 'स्यामलियाँ' 'तथा' 'संगिनी' को 'संगनी' कर दिया है। इन सूक्ष्म परिवर्तनों से ही शब्दों की रंगत बदल गई है। इसी प्रकार विदेशी—अरबी, फारसी और तुर्की—शब्दों को भी इन्होंने बोली के साँचे में ढालकर अपनी तरह से प्रयोग किया है। यथा—तमासा (तमाशा), मीजान (मीज़ान), गुलाल (गुल्लाला), मजा (मज़ः), नजर (नज़र), तरफ (तरफ़) इकरार (इक़्रार) इसारो (इशारः), मातावन (माहताब), रोजऊँ (रोज़), जाहिर (ज़ाहिर), और जरद (ज़र्द) आदि कितने ही शब्द हैं जो बुन्देली से अपना तालमेल रखते हैं और उसकी प्रकृति के अनुकूल बन गये हैं।

मुहावरे-कहावतें :—

मुहावरे व कहावतें जन भाषा की वह अमर थाती हैं, जो बरबस ही अपनी ओर सबका मन आकर्षित कर लेती है। इनकी सटीकता, सार्थकता और व्यंजकता तो श्लाघ्य है ही, श्रोता पर व्यापक प्रभाव छोड़ने की इनकी अप्रतिम शक्ति की तो कोई तुलना ही नहीं। बोलचाल की सबल भाषा के तो ये अनिवार्य उपकरण हैं। इनमें अनेक प्रकार की जीवन व्यापी अभिव्यक्तियाँ तो ऐसी हैं जिनका भाषा के पास तो कोई स्थानापन्न प्रयोग ही नहीं। सम्भवतः इसीलिए फागकारों ने भी अपने शिथिल और भोथे भावों को इनके माध्यम से तीक्ष्ण तीर की तरह संवेद्य और प्रभावी बनाया है। लोकप्रचलित इन उपमानों का आश्रय लेकर काव्य भाषा अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति में समर्थ हो सकी है। इनके द्वारा काव्य में वह प्रभाव उत्पन्न हुआ है जो कई कई पदों में भी सम्भव नहीं…

1. है तां नहीं खाँड़ के घुल्ला, पियें लेत कोऊ घोरें।
पंछी पियें घटत नइयाँ जल, लैरये समुद हिलोरें ॥
2. ईसुर करें गरे को कठला हमखाँ बलम हमारे।

प्रथम उदाहरण में 'खाँड़ के घुल्ला होना' 'घोल कर पीना' 'पंछिन के पिये समुद हिलोरें नई घटनीं' मुहावरे एवं कहावतों के माध्यम से व्यंग्य के रूप में हृदयगत भावों को एक तीव्र अभिव्यक्ति दी गई है तथा दूसरी पंक्ति में प्रियतमा की उत्कंठा 'गरे को कठला होबी' के रूप में कितनी पावन हो गई है।

फागों में सहजोद्‌गार एवं उक्तिवैचित्र्य—वचन चातुरी, विनोद, परिहास एवं कटूक्तियों—के अवसरों पर कहावतों एवं मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। निम्न पंक्तियों में वृद्ध भाभी के बनाव-शृंगार पर निंदा और घृणा का भाव कहावतों की प्रत्यंचा पर कितना सधा हुआ व्यंग्य है—

देखी ऊपर की सुफलाई भीतर कछू न भाई।
..............मुँह पर फिर गई स्याई।
ईसुर कात पुराने मठ पर कलई करें भौजाई।

क्रिया पद :—

किसी भी भाषा की अपनी प्रकृति और स्वरूप उसके क्रियापदों तथा विभक्ति प्रत्ययों पर निर्भर करती है। फागों में प्रयुक्त क्रियापदों की प्रकृति बुन्देली के अनुकूल ओकारान्त है। भूतकालिक क्रियाओं के कुछ रूप देखें—

1. कड़तन लग गओ मूँड़ दिरोंदा, ऐसो सिर खाँ ओंदा।
कारीगार ने बुरौ बनाओ, धरो न ऊँचो गोंदा।
2. मों खाँ ध्यान राधिका तेरौ, निधा नायखाँ फेरौ।
हरौ कस्ट जन जान आपनौ, बाधा आन उबेरौ।
आदि सक्ति उर पार ब्रम्ह के हों चरनन कौ चेरौ।
दोऊ कर जोर कात गंगाधर, मोरौ सोच निबेरौ।

क्रिया रूपों के अतिरिक्त संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण आदि भी ओकारान्त रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के रूप में ऊपर की पंक्तियों में आये, ऊँचो, मौ, तेरौ, आपनौ, चेरौ, मोरौ आदि रूप देखे जा सकते हैं।

फागों में प्रयुक्त क्रिया के मूलरूप स्वरान्त और व्यंजनान्त दोनों प्रकार के हैं। स्वरान्त में—अ, आ, ई, ऊ, ए और ओकारान्त...सोच, देख, आ, गा, दे, ले, पी, छू, हो, सो आदि तथा व्यंजनान्त में जान, मान, घूम, चूम आदि अनुनासिक्य में अन्त होने वाली धातुऐं हैं।

क्रियाओं की रूप-रचना में उनकी काल-रचना तथा कृदन्ती रूपों का महत्वपूर्ण स्थान है। फागों की भाषा में काल-रचना—वर्तमान, भूत और भविष्य—में एक से अधिक पद्धतियों का आश्रय लिया गया है। इन्हें कृदन्ती काल, मूल काल तथा संयुक्त काल कह सकते हैं।

कृदन्ती काल :—अधिकांश कृदन्तों का उपयोग सामान्य वर्तमानकाल और सामान्य भूतकाल के निर्माण में हुआ है। सामान्य वर्तमान काल में वर्तमान-कालिक कृदन्त प्रत्यय 'त' का उपयोग पुल्लिग एकवचन, बहुवचन तथा ती 'का उपयोग स्त्रीलिंग एकवचन में तथा 'तीं' का प्रयोग स्त्रीलिंग एकवचन व बहुवचन दोनों में हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

१. **लचकत** लंक बंक कच भारन।
२. **चलतीं** कर खाले हाँ मुँइयाँ...।
३. **जातीं** पटियाँ पारें पानैं...।

सामान्य भूतकाल का निर्माण भूतकालिक कृदन्तों से हुआ है। इसमें 'ई' प्रत्यय का उपयोग स्त्रीलिंग एकवचन के लिए तथा 'ईं' प्रत्यय का एकवचन व बहुवच न दोनों के लिए हुआ है। पुल्लिग प्रत्यय एकवचन के लिए 'ओ' तथा एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए 'ए' या 'ये' उपयोग में लगाया गया है। देखें—

१. खासी **लगी** नैन की गाँसी...।
२. कड़तन **हनीं नैन** तरवारें...।
३. कै पूरन पूनौं के ससि में कुरा **जमो** रजनी कौ।
४. कइयक **खड़े** तुमाये लानैं...।

मूलकाल—वे काल जो धातु में सीधे प्रत्यय जोड़कर बनाये गये है मूल काल के अंतर्गत समाहित हैं। वर्तमान काल धातु में 'ऐ', 'ऐं', 'बे', 'बैं', 'आऊँ' आदि प्रत्यय लगाकर प्राप्त किये गये हैं—

१. **बिसरै** न धरन गगरिया की...।
२. **पैरैं** छूटा तीन तराँ के...।
३. सब सखियाँ मिल **गाबें**।
४. एक नार अपनी उम्मर में तीन रूप **दरसाबे**।
५. ...चरनन सीस **नवाऊँ**।

भविष्यत्काल के प्रत्यय एं, ऐहै, ऐहैं, एँहौं, औ, **बै**, बैं आदि है। उदाहरणार्थ—

१. ...देखत ही रथ **भागें**।
२. सामू परै सोऊ छिद **जैहै**, अगल बगल **बरकै** ना।
३. सबरे निसचर मारे **जैहैं**, फिर का **रैहै** तोरी।
४. गंगाधर पीछूं **पछतैहौ**...।
५. **उड़हैं** पुन्न पताके।

६. जो तुम यार दूसरो करहौ····।

७. फिर कै कौन दिनन में आओ···फेर दरस न पाओ।

८. जो कोऊ ईकौ अरथ लगावै, सो नर चतुर कहावै।

९. जब घर आवें सइयाँ मोरे।

संयुक्त काल—मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया जोड़कर संयुक्त कालों की रचना हुई है। इसमें मुख्य क्रिया प्रायः कृदन्त या अन्य रूपों में होती है तथा सहायक क्रिया विभिन्न कालों का द्योतन करती है। इसके अंतर्गत वर्तमान और भूतकाल दो हैं।

वर्तमान काल : (क) वर्तमानकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

१. जासौं जरत रात है छाती।

२. हेरत जात उगरियन में हो तकती है परछैयाँ।

(ख) भूतकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

१. अब भगवान भये हैं सूदे।

२. गंगाधर ने सरन लई है।

३. बेंदा लाल लगो है।

भूत काल—(क) वर्तमान कालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

१. कातीं तीं हम आयें।

२. चाहत हती प्रीत प्यारे की।

(ख) भूतकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

१. लम्बी खोर दूर लौं डाटें ठांडी हतीं उघारें।

इनके अतिरिक्त फागों में क्रिया के संयुक्त रूप भी प्राप्त होते हैं। यथा-धातु के साथ क्रिया का संयोग—'कै तुमने गाने धर राखी', वर्तमान कालिक कृदन्त क्रिया (हेरत रईं दिखानी कऊँना, बैठ रईं मन रोकें।) भूतकालिक कृदन्त+क्रिया (हेरी न चली गई मुख मोरें) संज्ञा+क्रिया (सुन्दर चाल चलत गज कैसी) आदि।

फागों में वर्तमान कालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्तों के अतिरिक्त पूर्वकालिक कृदन्त, तात्कालिक कृदन्त, भूत संभावनार्थ तथा क्रियार्थक संज्ञा रूप भी प्राप्त होते हैं।

पूर्वकालिक कृदन्त : ऐ—गरल कंठ लै आन बिराजो···

ऐं—पियैं लेत कोऊ घोरें।

कै/कैं—अंतस कपट छोंड़ कें हमने···

०—लिपट लाज टो डारी।

तात्कालिक कृदन्त : अन—लचकी करहाई जल भरतन, नैंची गरदन करतन।

ई/ईं—कड़तईं लग गओ मूंड़ दिरौंदा।

भूत संभावनार्थ : ते : जो तुम छैल छला हो जाते···

क्रियार्थक संज्ञा—न : सोवत जगत उठत बैठत में गालन ऊपर परते।

बे : मिलबे कों यार खड़े दोरें।

इयो : इनकी भरन न भरियो मन में।

न : बिसरे न धरन गगरिया की

नो : बिन ही मोल बिकानो।

प्रत्यय एवं विभक्तियाँ

भाषा की रूप रचना के दूसरे प्रमुख तत्व विभक्ति प्रत्यय तथा परसर्ग हैं। फागों में इनके दो रूप मिलते हैं, एक अविकारी और दूसरा विकारी। अविकारी रूप का प्रयोग सामान्यतः कर्त्ता, कर्म, सम्बन्ध एवं अधिकरण कारक में हुआ है। ये किसी भी प्रकार के प्रत्यय या परसर्ग से सर्वथा मुक्त हैं। बानगी देखें—

१. रजुआ तनक न चलतीं नैंकैं। (कर्त्ता)

२. तैं का देत महाउर नाउन। (कर्म)

३. ···कमल दलन पै राखे। (सम्बन्ध)

प्रत्ययों एवं परसर्गों के आधार पर विकारी रूप के पुनः दो भेद मिलते हैं—एक संश्लिष्ट और दूसरा विश्लिष्ट। संश्लिष्ट रूप में कारक संबंधों को स्पष्ट करने वाले प्रत्यय—ए, ऐ, ऐं, ई, अन और इन—संज्ञा या सर्वनामों आदि से पूर्णतया जुड़े रहते हैं। यथा—

अन : ··कमल पत्र से पाउन (अधिकरण)

आगई नगन नगन पियराई (अधिकरण)

लचकत लंक बंक कच भारन (करण)

ई : अब दिन आये बसन्ती नीरें (सम्बन्ध)

विश्लिष्ट रूप में कारक चिह्न परसर्ग रूप में अलग से प्रयुक्त होते हैं। फागों में प्राप्त परसर्ग इस प्रकार हैं—

कर्त्ता : ने—

२. पैरे रजऊ ने प्रान हरन के···।

२. नैना रंगरेजिन ने मारे···।

कर्म और सम्प्रदान : को, कौं, खाँ, खौं, के लाने, के हेत, आदि

१. तनकौ तनक भरोसौ नइयाँ ।

२. नैना इसनेही कौं तरसैं ।

३. देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें ।

४. तुमखों मों के मसे सें चीन्हौ ।

५. आये बलम बिदा के लानै ।

६. दिन कें मिलबे हेत पधारी ।

करण और अपादान—से, सैं, तैं, सौ—

१. पाती छाती से चिपकाई···।

२. नैना बारे सैं न तांसे ।

३. खा गये पर नारी तें चुक्का ।

४. उड़उड़ परत पवन झोंकन सों ।

सम्बन्ध : की, के, कौ—

१. बखरी बसियत हैं भारे की···।

२. लोयन के दोऊ कोयन लौ···।

३. जो तिल लगत गाल कौ नीकौ ।

अधिकरण : में, पै, पर—

१. इक दिन ढरक आयें ओली में····।

२. गुदना लगत गाल पै प्यारौ ।

कहीं कहीं दो परसर्गों का एक साथ प्रयोग भी हुआ है । यथा—

१. कै निरमल दरपन के ऊपर सुमन धरो अरसी को ।

भाषा सौष्ठव :

बुन्देली भाषा का सहज सौन्दर्य, उसकी मिठास अनूठी है, किन्तु यदि उसके अनरूप उसकी वसन-सज्जा भी बन पड़े तो कहना ही क्या । फागकारों ने बुन्देली के इसी मार्दव रूप को निखारा है और उसकी श्रृंगार साधना में ऐसी सधी हुई तूलिका चलाई है कि एक एक रंग अपनी सुन्दरता में चमक उठा है। भाषा की सजावट का एक साधन अनुप्रास भी है । फागों की अधिकांश पंक्तियाँ इसकी छटा से जगमगा उठी हैं । कुछ विशिष्ट प्रयोग देखें—

१. चंचल चपल चलत चारों दिस, मानो भुमै बनैती ।

२. ठमस ठगीली ठगन प्रान खों, छैल छलन छल वारो ।

कहीं कहीं तो पूरी की पूरी पंक्ति आनुप्रासिक छटा से दीप्त चकाचौंध सी उत्पन्न करती है । आद्यानुप्रास के अतिरिक्त फागों में अंत्यानुप्रास का

प्रयोग भी पदबंधों को लालित्य से भर देता है । इससे पद में एक प्रकार के संगीत गुण की अभिवृद्धि होती है । प्रस्तुत उदाहरण देखें—

अब रित आई बसन्त बहारन, लगे फूल फल डारन ।

बागन बनन बंगलन बेलिन, बीथी बगर बजारन ।

हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन ।

शब्दों में एक लय है, एक गति है, जो बरबश अपनी ओर खींच लेती है । चरणों के अंतिम शब्दों में तो तुकों का प्रयोग लोक भाषा और हिन्दी की अपनी मौलिक विशेषता है । इनसे पंक्ति के माधुर्य में वृद्धि होती है और लय की रक्षा । गायन की दृष्टि से भी इनका अपना महत्व है । सम्भवतः इसीलिए फागकारों ने तुकों की समायोजना में आकाश–पाताल को एक कर रखा है तथा अपने प्रकार से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है । उदाहरण स्वरूप लग्गा, खग्गा, अग्गा, तग्गा, तथा वग्गा तुकों से समन्वित निम्न फाग देखी जा सकती है । फागकार ने किस प्रकार भावों के साथ तुकों को निभाया है—

जब सें लगो हमाओ लग्गा, कसको करिया खग्गा ।

बड़ें भोर झारततीं अपनो उठ द्वारें को अग्गा ।

ऐसो लगो प्रीत कौ डोरौ, टोरां टुटै न तग्गा ।

कहत ईसरी ऐसें बिद गओ, ज्यों गोटन में वग्गा ।

इसी प्रकार तुक मिलाने के लिए एक अन्य फाग में अन्यायी शब्द 'अनोई' हो गया है । न जाने ऐसे कितने शब्द अपने मूल रूप से विकृत होकर तुकों को जोड़ने में जुटे हुए हैं ।

कथ्य और भावों को प्रभावी बनाने तथा भाषा को गत्यात्मक रूप देने के लिए वीप्सा अलंकार का सचेष्ट प्रयोग भी फागकारों ने किया है—

१. उड़ उड़ परत पवन झोंकन सों कोर दवत न दावी ।

२. झुक झुक परत गिरत आनन पै, लेत चलत में लूमैं ।

३. हाँतन हाँत लई गोपिन ने राधा जुऐ गुआई ।

उक्त पक्तियों में—उड़-उड़, झुक-झुक, तथा हाँतन हाँत की आवृत्तियाँ अपने में एक विशेष अभिव्यंजना समोये हुए हैं । इनसे कथन को बल मिला है । फागों में कहीं-कहीं शब्दों की यह आवृत्ति दो से भी अधिक बार देखने को मिलती है । यह पुनरुक्ति है । इससे भी फागों की रुचिरता और उत्कर्ष को ध्वनि मिली है । ख्याली कवि की निम्न फाग में इसी व्यंजकता और भाषा सौष्ठव को देखें—

तोरौ लाल भाल पै सोहै, बेंदा लाल लगो है ।

लहँगा लाल लालिया ऊपर, लाल जड़ाऊ जड़ो है ।

मुख में लाल कपूर दृगन बिच, डोरा लाल खिचो है।
ख्याली लाल लाल पलका पर रंग लाल लिपटो है।

फागकारों ने अपनी भाषा को अर्थ ध्वनन की दृष्टि से भी माँज और तराश दी है। भाषा के अनेक शब्दों का निर्माण उनकी ध्वनि विशेष के आधार पर हुआ है।

१. झररर झोर अकास दिखानी, निसचर नार डिरानी।
२. झननन झनक परत श्रवनन पर, अनवट लसत चरन पर।

पहले में 'झररर' शब्द में आकाश को चूमती आग की ज्वाला की ध्वनि तथा दूसरे 'झननन' शब्द में अनौटों की झनकारें अर्थ ध्वनन से युक्त हैं। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ की प्रतीति और अपना प्रत्याशित चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है।

जातीं नीर भरन जमुना के, दैकें काजर बाँके।
पैजनियाँ उर पायजेब के पारें जात छमाके।
अँगूं बड़तीं जौन गलिन में माँ खिच जात सनाके।
सिवदयाल मोहन राधा के बाँदे बैठे नाके।

फाग से लगता है जैसे फागकार शब्द चयन के साथ ही उसमें तराश और पालिश चढ़ाने में भी सिद्ध हस्त है। विषयानुकूल भाषा को ढालने, उसमें औज्ज्वल्य, मसृणता और लोच उत्पन्न करने में भी उसका अपना एक स्थान है। जल भरने जाती राधिका की पैजनियों और पायजेबों की छनकार के अनुकूल ही फागकार ने शब्दों को संजोया है, जिनकी अनुनासिक्य ध्वनि की अनुगुंज से फाग की पंक्ति-पंक्ति कान्तियुक्त हो गयी है। पद का माधुर्य लगता है चुआ पड़ता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि फागों ने व्यावहारिक भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और उसे साहित्यिक धरातल तक लेजाने का एक सफल प्रयास किया। बुन्देली की सहज मधुर प्रकृति के अनुकूल शब्दों को ढाला और उनके खुरदरेपन को समतल एकरूपता प्रदान कर अपने में स्वाभाविक रीति से घुला लिया। जहाँ कहीं भी घिसाई से कुछ कमी रहगई है शब्द आँसते हैं।

● फागों की शब्द सम्पदा पर्याप्त समृद्ध है और अभिव्यक्ति के अनुकूल भी। इनमें संस्कृत के तत्सम, तद्भव, अनुकरणात्मक एवं देशज शब्दों के साथ ही विदेशी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। तद्भव शब्दों की संख्या तो लगभग अस्सी प्रतिशत तक है।

● मुहावरों एवं लोकोक्तियों के सम्यक प्रयोग से फागों की व्यंजकता के साथ ही साथ सटीकता और प्रभविष्णुता की भी अभिवृद्धि हुई है। इनसे फागों को लोक के निकट पहुँचने में भी सहायता मिली है।

● बुन्देली के क्रियापदों के प्रयोग से—उसकी ओकारान्त प्रकृति के कारण भाषा में सहज और माधुर्य गुण का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है।

● अनुप्रास, वीप्सा, पुनरुक्ति आदि अलंकरण भाषा को नादात्मक सौन्दर्य से अनुप्राणित करते हैं, उसे बोझिल नहीं बनाते।

● इनके अतिरिक्त फागों की भाषा में अधम तुक, अप्रतीतत्व, क्लिष्टत्व तथा अश्लीलत्व आदि कुछ दोष आगते हैं, किन्तु ऐसे स्थल नगण्य है।

कुल मिलाकर फागों की भाषा में बुन्देली का प्रौढ़ और शिष्ट रूप निखरा है। साधारण बोलचाल की भाषा से लेकर अलंकृत और संगीतात्मक वैभव तक ईसुरी की सहजता से लेकर गंगाधर, ख्याली और परसराम की रंगत तक तथा जीवन को अनुभूत क्षणों से लेकर नायिका भेदों तक सभी फागों में परिव्याप्त है।

सर्राफा, बाजार महोबा
(उ० प्र०)

फाग-काव्य के फड़

डॉ० गनेशी लाल बुधौलिया

•

बुंदेलखंडी फड़-साहित्य का एक प्रमुख अंग फाग-काव्य है। बुंदेली का फाग-काव्य बड़ा ऋद्ध और समृद्ध है। फाग-काव्य होली—गीतों के अंतर्गत आता है। ये लोकगीत होली के अवसर पर झांझ, मंजीरा, ढोलक, नगड़िया और रमतूला आदि लोकवाद्यों की संगति में सामूहिक रूप से गाए जाते हैं।

फागुन का महीना लगते ही इन लोकगीतों का गायन लोक-जीवन में गूंजने लगता है। ऋतुराज बसंत के आगमन पर जड़-चेतन में मादकता छा जाती है वन-उपवन अपने वैभव पर इतराने लगते हैं। पक्षियों के कलरव में उष्णता आ जाती है। होली का त्यौहार हमारी सामाजिक वृत्तियों के मुखर होने के लिए निश्चित किया गया है। इन दिनों हमारी दबी हुई मनोवृत्तियाँ स्वच्छंद रूप में विहार करने लगती हैं। हमारी श्रृंगारिक भावनाएँ और हमारे आमोद प्रमोद भी बंधन-मुक्त हो जाते हैं। श्लील और अश्लील की मर्यादाएँ थोड़ी देर के लिए भुला दी जाती हैं।

होली के आगमन पर बुंदेलखंड के ग्रामों, कस्बों और जनपदों में फाग गीतों के फड़ जमते हैं। यदि किसी मंडली की दूसरी मंडली से टक्कर हो गई तो फिर फागों के फड़ तीन-तीन दिन तक उखड़ने का नाम नही लेते हैं। नई कुमुक मिलती जाती है, कुछ उठते जाते हैं, कुछ बैठते जाते हैं और इस प्रकार वे फड़ जमे रहते हैं। विषयवार फागें, प्रश्नोत्तर की फागें और विभिन्न शैली की फागें गाई जाती हैं। गायक बड़ी मस्ती के साथ आत्मविस्मृत होकर गाते हैं और जनता भी भाव-विभोर होकर मंत्र-मुग्ध सी उसमें रस लेती है। फागुन के महीने में जब चांदनी खिली होती है, फागों के फड़ बड़े सुहावने लगते हैं।

वन-वीथिकाएँ करोंदा के फूलों की भीनी सुगंध से जब सुवासित हो उठती हैं, मंजरियों से लदी अमराइयों में जब कोयल मतवाली होकर कूक उठती है, जब वनस्पतियाँ टेसू के रागरंजित फूलों से अनुरंजित हो जाती हैं और विभिन्न प्रकार के वनैले फूल उनके अंचल में फूल उठते हैं, तब इन लोकगीतों का गायन इस वातावरण की पृष्ठभूमि में बड़ा मनोरम और मादक होता है।

बुंदेलखंड में फागों के कई रूप मिलते हैं। जैसे—१. चौकड़िया या टहूका की फागें, २. छन्दयाऊ या लावनी की फागें ३. सखयाऊ या साखी की फागें, ४. खड़ी फागे, ५. ढप की फागें ६. डिड़खुरयाऊ या डेढ़ पदी की फागें, ७. अधर और सदर की फागें ८. फाग गुप्तार्थ दुअंग भरी हुई पचकड़ियाँ, ९. फाग सिंहावलोकन १०. झूला, झूमर या झूला की फागें आदि। फाग-काव्य की इन विधाओं में से फाग-काव्य के फड़ों में विशेष रूप से चौकड़िया, छन्द-याऊ, सखयाऊ, डिड़ खुरयाऊ खड़ी फाग आदि फागों का प्रयोग होता है।

चौकड़िया फाग के गाने का प्रचलन ईसुरी के समय से हुआ, इनकी ये चौकड़ियाँ फागें सार या नरेन्द्र छंद में बंधी हुई हैं; पर उनमें अपनी अलग विशेषता है। प्रथम पंक्ति के १६ मात्राओं के पहले विश्राम में अन्त्यानुप्रास से मिलती हुई अनुप्रास-योजना की जाती है और बाकी चरणों के अंत में वही अनुप्रास रक्खा जाता है। प्रथम पंक्ति में चौथी मात्रा पर एक अल्प विराम भी दिया जाता है, इसके अभाव में फाग का गाना अपनी शैली में कठिन होगा। जैसे—

मोरो अब गौनो नियरानो, करबी कौन बहानो।
आवन लगे पिया के घर के, टिया टारिये कानो।
छूटो जात साथ सबही को, मन मतंग पछतानो।
इक दिन होने बिदा ईसुरी, आगम आन दिखानो।

छन्दयाऊ या लावनी की फागें—इन फागों में चौकड़िया फागों की ही टेक रखी जाती है। बाद में दोहा और लावनी आदि छंदों को जोड़कर बीच-बीच में टेक के रूप में चौकड़िया के ही चरण रखे जाते हैं। कोई-कोई छन्दयाऊ फागें काफी लम्बी-लम्बी होती हैं। फागों के फड़ जब जमते हैं, तो कभी-कभी छन्दयाऊ फाग एक रात ले जाती है। ऐसी फाग का एक अंश प्रस्तुत है।

देखी बैठी एक दिन सखी साथ इक संग।
आपस में चरचा करति, कोमल जिनके अंग।
कोमल जिनके अंग, कहत इक सखी सयानी।
को कितनी सुकुमार कहो, निज कथा बखानी।

कह 'मथुरा परसाद' सुनो कोमलता इक ही।
हो गयो कात जुकाम एक दिन पालक देखी।
टेक— ऐसी कौन सखी सुकमारी, कहत दूसरी नारी।

× × × ×

सखयाऊ फागें—दिवारी गीतों के दोहों की तरह सखयाऊ फागों का भी आविर्भाव होगा। इसमें दुमदार और दोहों की तरह अंत में एक कड़ी और जुड़ी होती है। नंददास जी ने अपने भँवरदूत में ऐसे पद दिए हैं, जिनमें पहले दो चरण रोला खंड के और अंत मे एक दुमदार दोहा रखखा गया है। इस शैली का प्रयोग सत्यनारायण 'कविरत्न' ने भी अपने भ्रमरगीत में दिया है। सखयाऊ फागों की दुम में १५ से लेकर २३ मात्रायें तक आई हैं।

चुनरी रंगी रंगरेज ने, गगरी गढ़त कुम्हार।
बिदिया गढ़ी सुनार ने, सो दमकत मांझ लिलार।
विदुलिया तौ लै दई रसीले छैल ने।

डिढ़ खुरयाऊ फागें—डेढ़ पदी फागों को डिढ़ खुरयाऊ फागें कहते हैं। इन्हीं को कहीं-कहीं झूला, झूमर या झूलना की फागें कहते हैं।

मनमोहन उदक न जाँय
हमारे, धीरे झुला देव पालना।
अरे हाँ! हमारे धीरे झुला देव पालना।

खड़ी फाग—३० मात्रा की होती है, इन फागों की कड़ियों के अंत में दीर्घ होना आवश्यक है। चौकड़िया फाग के चरण में परार्द्ध में दो मात्राएँ बढ़ा देने से खड़ी फाग बन जाती है।

वृज आये न जब से जा छाये, उन बिन दुख हम बहु पाये।
थिर न रहत अँखियन के अंजन, ढरक ढरक गालन पर आये।
भींजी रहत कंचुकी निस दिन, बरस बरस दृग झर लाये।
'मथुरा' श्याम भये न अपने, पकर पकर बहु समझाये।

फड़ साहित्य के अन्तर्गत फागों का अपना निजी महत्व है। फाग काव्य में बृहत्त्रयी प्रसिद्ध है। ईसुरी, गंगाधर व्यास और ख्यालीराम। आचार्य पं० श्याम सुन्दर जी बादल ने अपने 'बुंदेली के फाग साहित्य' में इस बृहत्त्रयी का उल्लेख किया है।

ईसुरी के समकालीन छतरपुर के यशस्वी कवि गंगाधर व्यास भी थे। बुंदेलखंड के लोक जीवन को इन दोनों कवियों ने अधिक प्रभावित किया है।

ईसुरी और गंगाधर व्यास में अनेकों बार प्रतिद्वन्द्विता की होड़ स्वरूप फड़बाजी और दंगल हुए, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि ईसुरी की फागों में स्वाभाविकता है और गंगाधर व्यास में पांडित्य का प्रदर्शन अधिक।

व्यास जी अपने समय के बुंदेलखंड में प्रचलित फड़-साहित्य के सभी अंगों पर अधिकारपूर्वक लिखते थे। वे बुंदेली फड़-साहित्य के निर्माताओं में से थे। इनके समय में बुंदेलखंड में बहुत से स्थानों पर साहित्यिक अखाड़े जमते थे, जिनमें दो-दो, तीन-तीन रातों तक अपने अपने सहायक दलों के साथ दो प्रमुख दलों में प्रतिद्वन्द्विता (फड़-बाजी) चलती रहती थी और कभी कभी तो यह बड़ी काट छाँट की होती थी। लोग हटने का नाम नहीं लेते थे जब तक कि एक दल 'चीं' न बोल जाय।

मऊरानीपुर, छतरपुर, चरखारी, महोबा, झाँसी, गुरसराय, बिजावर आदि स्थान फड़-साहित्य के केन्द्र थे। जब ईसुरी की चौकड़िया फागों का आनन्द-दायक माधुर्य बुंदेलखंड के जन-जीवन में प्रवेश करने लगा, कदाचित तभी से व्यास जी का ध्यान फागों की ओर गया। चौकड़िया के अन्तर्गत खड़ी फाग के प्रवर्तक व्यास जी थे। व्यास जी नायिका भेद के मर्मज्ञ थे और साथ ही कुशल चित्रकार। रीतिकालीन परम्परा की उन पर स्पष्ट छाप थी।

ख्यालीराम ईसुरी और गंगाधर व्यास के समकालीन थे। बुंदेलखंड के लिए यह गौरव की बात है कि उसने एक ही समय में इन तीन यशस्वी लोक कवियों को पैदा किया। शृंगार के अतिरिक्त इन्होंने भक्ति और ज्ञान पर भी लेखनी चलाई है। इनकी रचनाओं पर भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों की स्पष्ट छाप है। वे नायिका-भेद के मर्मज्ञ तथा चतुर चितेरे थे। फाग काव्य के फड़ की एक फाग इसी संबंध में देखें। एक अनुशयना संकेत विघट्टना नायिका का चित्र अंकित है—

नहि वियोग वा सौत घर नहीं, ग्रहा बलवंत।
बहू होत कस दूबरी लागे ललित वसंत।
आली नहि वियोग पिय केरो, मलिन भयौ तन तेरो।
सुख सम्पत्ति सब ग्रहा बली हैं, नहीं विधाता डेरो।
ऐसी ललित बसंत अवाई स्रवत समीर छरेरो।
'ख्यालीराम' नायिका को दुःख कवि जन करौ निवेरो।

फाग काव्य की छन्दयाऊ फागों के फड़बाज भुजबल सिंह ठाकुर थे। चौकड़िया फाग में ईसुरी की कला को जो ख्याति प्राप्त हुई, वही ख्याति छन्दयाऊ (छन्दनदार) फागों में ठाकुर साहब को प्राप्त हुई। उनका लोक

जीवन का अनुभव गहन और विस्तृत था। इनकी पुस्तक 'फाग रसायन' में लोक जीवन की सुन्दर झांकियों के कई मनोरम स्थल हैं। यह अच्छे फड़बाज फागकार थे। इनकी एक फड़ की फाग का कुछ अंश देखें जो छन्दनदार है।

अकल बुद्धि अरु ज्ञान को अरु विद्या को मूल।
चार बरंडा को बनो सुनों एक स्कूल।
एक एक बरामदा में लड़का हैं चार।
बैठे अपनी मिसल में, पुस्तक पढ़त उचार।
टेक—लड़का बैठे पढ़त किताबें, गुरु खां सबद सुनावें।
सांगीत—बैठे मुंशी जी उस्ताद, लड़कन की सुनते फरयाद।
उनकी करते तहकीकात जो चाल करें।
लरका पढ़ने में हुस्यार पोथी लीन्हें चार चार।
तिनकी गाथा रहे उचार सब निकट धरें।
भूल जात जहां, मास्टर लरकन को समझावें...लाल
नम्बर अपने से सकल, गुरु को सबक सुनावें।
चार चार पोथी लिये, बांच लगावें सीस।
एक एक हर ग्रंथ में पन्ना हैं चालीस।
टेक—पांच गिरह के लम्बे चौड़े कागज सेत सुहावें।
छंद—पढ़ रहे बाल, है खुशी हाल पोथन पै लाल पूठा लागे।
रहे एक संग, दिल हो उमंग सी दये तंग नीचट धागे।
दोहा—नीचट डोरा से सियें मैले होन न पावें।
तिन पूठन के भीतर कागज सेत सुहावें।
एक एक हर पत्र में सतरें हैं चालीस।
एक एक हर सतर में अक्षर पैंतालीस।
टेक—ना छोटे ना मोटे दसकत बड़े मजे के रावें।...

फाग काव्य के फड़ों में भ्रमरगीत-परम्परा का पालन हुआ है। इस विषय पर न जानें कितनी फागें हैं। बुंदेली के दो रस-सिद्ध कवियों की एक एक रचना देखें। पहले नाथूरामजी माहौर की रचना देखें। माहौर जी बुंदेली फड़-साहित्य के प्रवंतकों में से हैं।

ऊधौ अपने भये बिगाने, जो जी कैसें मानें।
जी को लुढ़क जात है निठुवई, उइखां रुखौ खाने।
भये जाय चेरी के चेरे बनकें वनें अयाने।
कौन तरां जी खां समझावैं दइये किनें उरानें।

पैलें कौल करार करे तें सो तो सबई भुलानें।
'माहुर सुकवि' दांत हाथी के, बने हमाये लानें।

राजकवि बिहारी, बिजावर (सं० १६४५ वि०) ने भी फड़काव्य में योग दिया है। इनकी एक फाग इसी परम्परा में देखें—

ऊधौ हमें स्याम ही सूजें, आप वृथा की बूजें।
जिनके हाथ नऊ निधि आई का छदाम को छूजें।
भोग भाव सों भूले तन-मन, कहा जोग से जूजें।
इक तो लाल लगन कें भूखे बसे चित्त में दूजें।
जो मन मोहन मिलें बिहारी, बारा मड़िया पूजें।

इसी संदर्भ में घनश्याम पाण्डेय मऊरानीपुरी की एक फाग प्रस्तुत है। चातक की मेघ के प्रति अनन्य निष्ठा का चित्रण करके 'घनश्याम' शब्द का श्लेषात्मक प्रयोग करके परिकरांकुर अलंकार घनश्याम कवि ने कैसा बैठाया है।

ऊधौ पंछी एक पपीरा, नेम प्रेम में धीरा।
सूखो कंठ जेठ मासन में सहत प्यास की पीरा।
मांगत पानी पाथर पावत तऊ न होत अधीरा।
गंगा मानसरोवर हू में नईं डुलावत जीरा।
दै 'घनश्याम' स्वाति की बूंदें हरत भक्त की पीरा

इनके अतिरिक्त बुंदेलखंड में बहुत अच्छे फागकार हुए हैं। उनका फाग-साहित्य लोक-काव्य में स्थायी मूल्य का है। जैसे खूबचन्द, भरतू, बोधन, हीरालाल तिवारी, तांतीलाल देवपुरिया, मोहन सुनार, काशी लखेरे, शंभुदयाल नायक, मंगलदीन उपाध्याय, बैजनाथ व्यास, सूर श्याम तिवारी, पदमसिंह, लाला कीरत राम 'शहजादे', शिवराम शर्मा 'रमेश', पं० बच्चीलाल तिवारी आदि।

फाग-काव्य के फड़ किसी विषय को लेकर के जम जाते हैं जैसे नायिका भेद, नायिका का नख-शिख वर्णन या किसी पौराणिक विषय पर। फाग-काव्य के दो आचार्यों ईसुरी और गंगाधर व्यास की फागें नायिका के नेत्र-सौंदर्य पर देखें—

ऐसे अलबेली के नैना, मुख सें कात बनैना।
सामें परै सोऊ छिद जैहै, जिन्दा जियत बचैना।
लागत चोट निसाने ऊपर, पंछी उड़त बचैना।
पर जियरा के लेत 'ईसुरी' जे निर्दई कसकै ना।

× × · × ×

अंखियां पिस्तौलैं सी भर कें, मारन चात समर कें।
गोली लाज दरद की दारू गज कर देत नजर कें।
देत लगाय सैन को सूजन, पल की टोपी धर कें।
'ईसुर' फैर होत फुरती में, कोऊ कहाँ लों बरकें।

पिस्तौल का रूपक कितना सांगोपांग है। व्यास गंगाधर भी कब चूकने वाले है, उनकी नायिका ने भी काजर को कोरों में भरकर तिरछे करके नैन-बान चला दिये।

मारे नैन तरीछे करकें, काजर कोरन भर कैं।
जैसे व्याध, मृगा के ऊपर छोड़त बान समर कैं।
ज्यों हथियार नैंक न मानै घायल होत नजर कैं।
सूरवीर रनधीर सिपाही वेदत सामें पर कैं।
'गंगाधर' ना लगत कूर के पूरे लगैं सुघर कैं।

इस प्रकार आँख विषय पर ही बहुत फागें हैं। इसी विषय पर फाग-काव्य के फड़ घन्टों जमे रह सकते हैं।

अटकाऊ (प्रश्नोत्तर) फागों के फड़ मजेदार होते हैं व्यासगंगाधर की कुछ फागें यहाँ प्रस्तुत हैं—

भौंरा काये न चम्पै चाहै, ई को कारन का है।
संसारी में सब कोऊ जानें, सुघर फूल चम्पा है।
कै कछु जहर भरो चम्पा में, कै कछु रार बढ़ा है।
तजत पराग काये सें मधुकर, मानै कौन वृथा है।
दत्तानन्द के गुरु गंगाधर साँची भेद बता है।

उन दिनों अटकाऊ फागों का फड़ में बड़ा रिवाज था—

मोरो जो अटका पहिचानौ, होय तुम्हारो जानौ।
देव की चुल मे नाहर घुस गओ रोवै ठाढ़ो दानौ।
बंदरा रओ पकर पटवारी नौरा रोपै थानौ।
हिरना तौ पेड़े पै चढ़ गओ विधना पहरै गानौ।
'गंगाधर' मुहलत दई तुम खां बरस रोज लौ छानौ।

फड़ की इस फाग में एक पहेली है, उसके सुलझाने के लिए प्रतिपक्ष को एक वर्ष का समय दिया गया है। एक फाग और देखें—

हरि को सिन्धु-सुता मन मोहै, चरन कमल चित सोहै।
तीन मीन ब्यालीस चन्द में, मनो राहु बैठो है।

चार चकोर सात हैं खंजन, सुक्र सनीचर दो है।
गंगाधर' गावैं दंगल में, इनकी समसर को है।

फाग-काव्य के फड़ में नायिका भेद का विशिष्ट स्थान है। इस विषय पर फाग साहित्य बड़ा सम्पन्न है। शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—का सुन्दर, सरस और हृदयग्राही अंकन हुआ है। बोधन कवि की फड़ की एक फाग देखें—

करकें चन्द्रमुखी सिगारन, गई ब्रजराज निहारन।
चलत कुंज-बन पुंज सुगंधन ज्यों ऋतुराज बहारन।
सारी सेत हीर-हारन कच-मुक्ता झरत हजारन।
'बोधन' बता नायिका कौनी करो नाम उच्चारन।

भरतू कवि की एक फड़ की फाग देखें। एक प्रश्न है, उत्तर की अपेक्षा की गई है—

मुंदरी कौन दिना कपि डारी उत्तर कहो बिचारी।
कितनी बेरा कौन लगन से, सीता कर में धारी।
कौन नक्षत्र कौन तिथि अंतर गये रावन दरबारी।
'द्विज' भरतू कयें भेद फाग को बता बोल कै हारी।

फाग-काव्य के फड़ों का यथा तथ्य चित्रण इस लेख की सीमा क्षमता के बाहर है। केवल थोड़ी सी बानगी यहाँ प्रस्तुत की गई है। फाग-काव्य का विस्तार क्षेत्र, उसकी लोकप्रियता, उसका शास्त्रीय विवेचन (छंद शास्त्र तथा संगीत शास्त्र की दृष्टि से) उसका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन आदि ऐसे विषय हैं, जिसके लिए पृथक से विचार किया जाना चाहिए।

—राठ, जिला हमीरपुर, उ० प्र०

बुन्देली फागों में भक्ति—भावना

• डॉ० हरिसिंह घोष

बुन्देली फागें लोक-समर्पित रचनाकार की ऐसी रसमय एवं लयात्मक अभिव्यक्ति है, जिनमें बुन्देली जनमानस का प्रतिबिम्ब सहज ही दर्शित होता है। फागोत्सव से जन्म लेकर सामूहिक भावभूमि पर अठखेलियाँ करते हुए लोक-मानस की भाव-तरंगों से पोषित ये लोकगीत बुन्देली संस्कारों को संजोये हुए है। परिवर्ती काल में भक्ति की लहर बुन्देली काव्य को भी व्यापक रूप से प्रभावित कर चुकी थी, इसीलिये इन फागों का अंतस भक्ति-भावना से ओत प्रोत है।

भक्ति मन की एक वृत्ति या भाव है।[१] काव्योचित लक्षण-ग्रंथों में भी भक्ति को भाव की संज्ञा दी गई है।[२] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की मुख्य तीन वृत्तियाँ है—ज्ञान, भावना और क्रिया। समष्टिरूप से इन तीनों वृत्तियों का समाहार प्रत्येक मानसिक व्यापार में रहता है और व्यष्टिरूप से किसी एक वृत्ति की प्रमुखता होती है। भक्ति भावनावृत्ति के अन्तर्गत आती है, क्योंकि उसमें भावना की प्रमुखता है। भावना के अन्तर्गत शाखाओं के रूप में विद्यमान वृत्तियाँ समासतः तीन भागों में विभक्त की जा सकती हैं—देहात्मक (यथा सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास), आवेशात्मक (यथा—भय-क्रोध) और रसात्मक (यथा प्रेम-श्रद्धा)।[३]

भक्ति भावना से आवेग (आवेश) का प्रादुर्भाव होता है, जिसे साहित्य में अनुभाव की संज्ञा दी गई है। आवेग का स्थाई भाव प्रेम-रस है।[४] प्रेम-रस या प्रीति की अभिव्यक्ति चार रूपों में होती है—वात्सल्य भाव, सख्य भाव, माधुर्य भाव, एवं दास्य भाव।[५] तत्कालीन काव्य की तरह बुन्देली फागों में भी भक्ति-संवलित शृंगार की प्रधानता को नकारा नहीं जा सकता, किन्तु फड़

साहित्य का एक अंग होने के कारण इन लोकगीतों में भक्ति की सभी भावनाओं की अभिव्यक्ति एक आवश्यकता बन गई थी।

वात्सल्य भक्ति भावना

वात्सल्य भाव में प्रभु की उपासना उन्हें अपना पुत्र समझकर की जाती है। इसमें ममता और स्नेह की प्रगाढ़ता रहती है। वात्सल्य भाव में प्रभु के ऐश्वर्य का आभास प्रायः लुप्त ही हो जाता है और अपने गुरुत्व का भान बना रहता है। अपने प्रिय लालन का हित-चिंतन करते हुए भक्त जहाँ उसकी तोतली वाणी और मनोहारी बाल क्रीड़ाओं में आनंद लेता है, वहीं आवश्यकता पड़ने पर उसे झिड़कने और ताड़ने में भी संकोच नहीं करता। सच में यह वात्सल्य—भक्ति अटपटी ही है। यहाँ शासक शास्य हो जाता है।

बुन्देली फागों में वात्सल्य भाव की सहज अभिव्यक्ति सचमुच अनूठी है। झूला से लेकर सभी बाल सुलभ क्रीड़ाओं को फागकारों ने अपने काव्य में स्थान दिया है। नन्द—भवन में माता यशोदा अपने प्यारे कन्हैया को पालना में झुलाते हुए गा रही है—

> अरे हाँ, हाँ, कोउ पलना देय झुलाय
> हमारे झूलें कन्हैया पालना।

माँ का कोमल हृदय अपने मोहन की सुकुमारता को जानता है। उसका छोटा-सा कष्ट भी मां के लिये असह्य है। झूला में सोते हुए मनमोहन ढुरक न जायें इसकी उसे कितनी चिंता है—

> मन मोहन ढुरक ना जाय
> सखी धीरे सें झुलादो पालना॥
> काहे के पलना बने, काकी लागी डोर।
> चन्दन के पलना बने, रेशम लागी डोर॥ सखी धीरे···
> कौने सजाये पालना, कोहै झुलावन हार।
> नन्द बाबा पलना सजे, जसुदा झुलावन हार॥ सखी धीरे···
> कौने हतुलियाँ चूमीं, लई कौने नजरिया उतार।
> गोपी बलइयाँ लैलईं, लई शंभू नजरिया उतर॥ सखी धीरे से···[६]

प्रातः समीर का स्पर्श पाते ही श्यामसुन्दर नित्य जाग जाते थे, किन्तु आज सूरज की किरणों ने आँगन को धो दिया, पर वे अभी तक सोकर नहीं उठे। जब तक ललन की ठुनकन घर के सूनेपन को न मिटा दे, तब तक माँ का मन काम में कैसे लगे? जननी यशोदा अपने लालन को विविध मनुहार के द्वारा जगातीं हैं—

अब तौ जागौ नन्द दुलारे, भोर भये भुनसारे।
दीपक जोत मलीन भई है छिपे गगन के तारे।
पनिहारीं पानी खाँ निकरीं चलन लगे गैलारे।
दौआ आस करत दरसन की हरदम खड़े दुआरे ॥

बालक की चपलता माँ को आनंदित करती है, किंतु दूसरों के घर पर किया गया ऊधम तो उलाहन बन कर ही आवेगा। ग्वालिनें यशोदा जी के घर उलाहना लेकर आतीं हैं और तीखे शब्दों में श्रीकृष्ण के कृत्यों को कह रहीं हैं—

ग्वालिन देन उरानौ आई, सुनिये जसुदा माई।
सूने घर मोरे में घुस के माखन दओ फैलाई।
दौरी तबै चिरावन लागे संगै सखा अठाई।
गिरधारी कयें तोरे सुत की काँ लौंकरों बड़ाई ॥[७]

वात्सल्य भक्ति कितनी अनोखी है कि भक्त सर्वशक्तिवान भगवान की बाल क्रीड़ाओं में आनंद भी लेता है और आवश्यकता पड़ने पर डाँट फटकार भी लेता है। बुन्देली फागकार की भाव भूमि में यशोदा जी का श्री कृष्ण जी को डाटना बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है—

ऐसी सुन ग्वालिन की बानी जसुदा जी रिसयानी।
पकरे केस झपट के सुत के डाँटन लगी दिमानी ॥
रोज उरानौ काँ लौं सहिये काये करत मनमानी।
फेर उरानौ आओ गिरधर सुनलो तुमने जानी ॥

श्री कृष्ण चतुर हैं। माँ के डाँटने पर वे अपनी सफाई देते हैं और उलाहना देने वाली ग्वालिनों की बुराई का बखान अपनी बाल सुलभ बातों में करते हैं।

मइया इनके कयें लग जातीं, हमखाँ नाहक में खिसयातीं
पानी भरो दूध में दूनों तासों गाड़ो कातीं।
जे तौ अपने सगे बाप सें सांची नहीं बतातीं।
बेरई बेर तुम्हारे आँगें भइयन की सौं खातीं।
गंगाधर ई बृज की नारीं धजी कौ साँप बनातीं ॥

नंदरानी प्रतिदिन के उलाहनों से ऊब जाती हैं, किन्तु अपने लड़ैते लाल को आखिर कब तक डाटें। स्नेह की प्रगाढ़ता के कारण अपने पुत्र का दोष भी नहीं दिखता। उन्हें उलाहने भी झूंठे लगने लगते हैं। एक दिन तो उन्होंने उलाहना देने आई ग्वालिन को डाँट कर भगा ही दिया—

बारे बनमाली का जाने, कयी जसोदा माँ ने।
जरतीं काये हमारे लालन तुमें न देख सिहाने।

.... ईसुर ठाँड़ीरात दुआरें रोजउँ देत उराने।

बाल्यलीलारसमत्त श्री कृष्ण चन्द्र जी मचल गये हैं। बाल हठ बड़ी विचित्र होती है। ब्रजरानी अपने लाड़ले लालन को मनाने का पूरा प्रयास कर रहीं हैं, किन्तु वे तो रोते हुए धरती पर बारबार लोट-लोट जाते हैं—

पोंछे पुचकारे नंदरनियां, घनश्याम उठा लयें जब कनियां।
....
लोटे धरन हात ना आवें दृगनन से ढारें पनियां।
ईसुर हठ जा ठानी हरि ने छाँड़त नइयाँ काड़नियां ॥

पुत्र कितना ही बड़ा हो जाय, माँ के लिये छोटा ही रहता है। उसका हित-चिंतन माँ का स्वभाव बन जाता है। श्री कृष्ण जी मधुबन से नहीं लौटे, माता यशोदा अत्यन्त चिंतित हैं। पुरानी लाल फाग की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

अरे हाँ, कब मधुबन से आवे कन्हैया
कब मधुबन से आवें लाल।

सख्य भक्ति-भावना

भक्त में सख्य भक्ति भावना का उदय साधना की चरम स्थिति है।[८] इसमें भक्त की दृष्टि ऐश्वर्य और माहात्मय ने विशेष आकर्षित न होकर प्रभु की सुख-सुविधा पर ही रहती है। बराबरी का नाता होने के कारण इसमें शील-संकोच की शिथिलता रहती है। इसीलिये यदि प्रभु को अपनी आज्ञा की अव-हेलना कराने में ही सुख मिलता है, तो सख्य भाव से ओत-प्रोत भक्त प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करने में भी संकोच नहीं करेगा, किन्तु प्रिय सखा के मन के विरुद्ध कुछ भी करने का साहस नहीं कर सकता।[९] प्रभु का सखा सभी मर्यादाओं के परे रहता है।

बुन्देली फागों में सख्य-भक्ति भावना के दर्शन तो होते हैं, किन्तु इनमें सहजता की जगह शास्त्रीयता अधिक है। ऐसा लगता है कि फड़ों में आवश्य-कता के समय इस भाव की पूर्ति हुई और इसीलिये इन फागों में रचनाकार के अध्ययन का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। सखाओं के साथ यमुना तट पर आनंदकंद श्रीकृष्ण गेंदलीला कर रहे हैं, छन्दयाऊ फाग की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

टेक— खेलन चले गेंद गिरधारी, करके अधर तयारी।
छन्द—लई गेंद हाल, जा नन्दलाल, करके निहाल आये आली।
हैं सखा संग, कर रहे रंग, घालें इकंग दै दै ताली।

सखा भाव रखने वाले भक्त के पास अपना कुछ न होने पर भी प्रभु के ऐश्वर्य की दीवाल उनके बीच नहीं आती। प्रभु की इच्छा पर वह समर्पित है। इसीलिये भगवान को सारथी बनाने में भी उसे किंचित संकोच नहीं—

हरि ने अर्जुन के रथ हांके, बने सारथी बांके।[10]

ईश्वर के प्रति जब ऐसा परम सख्य भाव स्थापित हो जाता है, तब ईश्वर को भी भक्त की चिंता होती है। अपने सहपाठी सखा सुदामा की दीन-हीन हालत देखकर भगवान श्रीकृष्ण रो पड़ते हैं—

हरि दुखी सुदामा जब जोये, दृग भर आये दोई कोये।
फटी बिमाईं लगे पग कंटक चीर फटे सब अंत रोये।
इतने कष्ट सहे तुम भाई कओ इतने दिन कां खोये।
रामप्रसाद कहें धिक हमको मित्र दुखी हम सुख सोये।।[11]

मधुर भक्ति-भावना

मधुर भक्ति-भावना में आत्म-समर्पण की पूर्णता है।[12] यहाँ भक्त प्रभु को पति के रूप में देखता है।[13] अतः मधुर भाव में प्रीति की प्रगाढ़ता और पारस्परिक अभिन्नता सर्वाधिक होती है और संकोच नाममात्र के लिये भी नहीं रहता। सच बात तो यह है कि प्रिया और प्रियम में उपास्य उपासक का भेद नहीं रहता।[14] भाव-दृष्टि से मधुर भक्ति भावना में अन्य भावों का समावेश होने के साथ ही प्रियतम को सुमधुर रति प्रदान करने की विशेषता रहती है। सम्भवतः फागकारों के मन की 'मचलन यहाँ स्थिर' हो गई और मधुर भक्ति की फागों का सृजन बहुलता से हुआ है।

मधुर भक्ति-रस में साहित्यिक दृष्टि से कृष्ण, गोपियां एवं बृजबालायें आदि उद्दीपन विभाव हैं और स्वेद, कंप, रोमांच, विवर्णता आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। स्थाई भाव रति है। अतः श्रृंगार रस के समान ही संयोग और विप्रलंभ की अवस्थायें इसमें पाई जातीं हैं।[15]

बुन्देली भागों में मधुर भाव की ऐसी नदी बही कि फागों का दूसरा नाम मधुर रस कहने में कोई हिचक नहीं होती। फागकार लोकरुचि में इतना सराबोर हो गया कि रीतिकालीन प्रवृत्ति यहाँ मुखरित होती दिखाई देती है। सर्वप्रथम होली के रंग में रंगे राधा-कृष्ण के मनोहारी दर्शन करिये—

भींजी फिरें राधिका रंग में, मनमोहन के संग में।
दध की धूमर-धाम मचा दई मजा उड़ावत मग में।।
कोउ माजूम-धतूरे फांकें कोउ छका दई भंग में।
तन कपड़ा गये उगर ईसुरी करी ढांक सब ढंग में।।

सामान्य जन मानस श्री राधा-कृष्ण के अलौकिक माधुर्य भाव की दिव्यता को नहीं जानता। लोक कवि की वाणी लोक जन-मन का दर्पण है। बुन्देली फागकार की अभिव्यक्ति कितनी सहज बन पड़ी है—

बृज में राधा औ गिरधारी, करें खुलासा यारी।
बिगरे जात नेंक ना हटकें उनके बाप मतारी।
ई सुन लेव हुयी कैबे खां कये की नइयां गारी।
अपनी अपनी जांगन जुरकें धैर करत नरनारी।
ईसुर कऊँ बजन नईं दयी येक हांत की तारी।।

विश्वमोहन श्याम सुन्दर अलौकिक प्रेम-रस के आस्वादन हेतु कहीं श्री राधिका जी से एकान्त मिलन का वचन लेते हैं।

तो कहीं रसमयी रास क्रीड़ा का संकल्प पूरा करने के लिये बाँसुरी पर बृजसुन्दरियों के मन को हरण करने वाली कामबीज की मधुर तान छेड़ते। वंसी ध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो जाती है, वे श्री कृष्ण से मिलने के लिये दौड़ पड़ती हैं—

जब सें बजी कृष्ण की बीना, कान गोपकन दीना।
सुनतन सबद सुरन में सन गईं लागीं देन पसीना।
छक गईं छैल छली नें दीने काम के छोर छबीना।
पौंचीं जाय कृष्ण के येंगर घर में कोउ रहींना।
ईसुर मगन भईं मधुबन में चरन कमल लौलीना।।

वियोग ही संयोग का पोषक है।[16] वियोग की स्थिति में उपासक के हृदय की मधुर भक्ति-भावना में अत्याधिक दृढ़ता आती है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों को प्रकृति का प्रत्येक उपादान रसहीन और कष्ट-प्रद दिखाई देता है—

खाली परी कृष्ण बिन कुंजें, वे मधुकर ना गुंजें।
जे द्रुम लता छता बांदे तीं ते बिन पात समुंजें।
लालई लौदें ललक लहलही उली न फिर सें मुंजें।
कुबजा कंत सरीक भओ है सूक सूक तन धुंजें।
ईसुर लौट आयें जब बृज खां मरीं गोपिका सुजें।।[17]

गोपियों की व्याकुलता आंखों से आंसुओं के रूप में झरने लगती है—

ऊधो जब से स्याम सिधारे, बरसत नैन हमारे।
अंजन थिर न रहत अंखियन में कर कपोल भये कारे।

उर की अंगिया कभऊँ न सूखत बैरये नैन पनारे।
डूब रओ बृज फूलमती अब काये न आन उबारे॥

दास्य भक्ति-भावना

भक्ति की भूमिका में सर्वप्रथम स्थान रखने वाली दास्य भक्ति में भक्त की भावना ईश्वर के प्रति स्वामी और इष्ट देव की होती है और वह स्वयं को उसका दास, सेवक और अनुचर मानता है।[१८] आचार्य वल्लभ ने दास्य भक्ति में निष्काम भावना को प्रधानता दी है।[१९]

दास्य भक्ति में भक्त का हृदय आत्म-दोष-प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण, और भगवान की सर्व सामर्थ्य की अनुभूति की भावना से आप्लावित रहता है।[२०]

दास्य रससिक्त भावुक का ध्यान पद प्रान्त से प्रारम्भ होकर मुखमण्डल पर विराम पाता है। फागकार प्रथम पूज्य श्री गिरजानन्दन के चरणों की वंदना करता है—

पहिले गिरजा तनय मनाऊँ, पद पंकज सिर नाऊँ।
अच्छत धूप दीप सब मेवा सिर सिन्दूर चढ़ाऊँ।
सिद्धि करन अघनासक हौ प्रभु मांग बुद्धिवर पाऊँ।
परसराम अस्तुत कर गन की फाग पचासा गाऊँ॥

प्रभु की सेवा में भक्त का सर्वस्व समर्पित है। उसकी आकाक्षायें भौतिकता की समृद्धि से बहुत दूर हैं। वह भगवन्नाम स्मरण करते हुए प्रभु की लीला स्थली वृंदावन में रहना चाहता है। 'बचे खुचे बृज जन के टूंका' पर संतोष रखने की बात ने तो फागकार को भक्त कवि रसखान से भी आगे ला दिया है—

चल मन वृंदावन में रइये, कृष्ण राधिका कइये।
झाड़ूदार हुओ गोकुल के गैलें साफ बनइये।
जो दोरे देवनन खां दुर्लभ तिनैं बुहारु दइये।
बचे खुचे बृज जन के टूंका मांग मांग कें खइये॥

दास्य भावना से ओत प्रोत भक्त भगवान की सर्वसामर्थ्य की अनुभूति करता है। जो साकार है, वही निराकार है। 'बिन बानी बकता बड़ जोगी' का भाव फागकार अपने शब्दों में व्यक्त करता है—

हैं वो निराकार निरबानी, बोलत मधुरी बानी।
है सब ठौर-ठौर ना कायम समझ लेव गुन ग्यानी।
'मधुरा' कात सभा के अन्दर है बेदों की बानी॥

अपने हृदय की निष्कलुषता अपने प्रभु की अनुकूलता सम्पादन का सर्वोत्तम मार्ग दास्य भक्ति ही है। 'दासोऽहम्' की भावना से भक्त भगवान की भक्ति करता है। वह अपने आपको प्रभु का एक विनीत और विश्वासी सेवक मानता है। संसार से नाता तोड़ कर प्रभु की शरण में आने पर उद्धार निश्चित हो जाता है। भक्त प्रभु से अपने संकट दूर करने की विनीत प्रार्थना करते हुए उन्हें पूर्व में पापियों के उद्धार की स्मृति दिलाता है—

हमरे संकट काट मुरारी, करो न नैंक अबारी।
द्रुपदसुता के कारन तुमनें बसन रूप लओ धारी।
....
गनका सबरी ने गत पाई बैठ बिमान सिधारी।
फूलमती सी अधम न कौनउ करियो सुरत हमारी॥

माँ का हृदय सरल है। साधक के हृदय में शिशुभाव के दृढ़ होने पर मातृभक्ति प्रगाढ़ रूप में प्रकट हो जाती है और साधक बालक जैसा सरल हो जाता है।

सेवा और उपासना करते-करते प्रभु और अपने बीच की दूरी दूर कर आत्मीयता का अनुभव करने लगता है। वह प्रभु को अपने समीप पाता है और उनसे अपनी बातें करता है। फागकार के अंतिम दिनों की यह रचना कितना सामीप्य प्रकट करती है—

तुम बिन को देखै जा नारी, सुनलो अवध बिहारी।
वैद, हकीम, डाकटर, गुनियाँ सबने मानी हारी।
तुम प्रभु बैदनाथ वैदन के लैलो खबर हमारी।
मोतीलाल आसरो तुमरो ताकै सरन तुमारी॥[२१]

बुन्देली फागों में भक्तिभावना के सभी रूपों की प्रचुरता है। लोक रुचि के अनुरूप फागों में जहाँ सरलता और सहजता है, वहीं फड़ों की प्रतियोगिता के कारण शास्त्रीयता की भी कमी नहीं है। भक्ति रस के सर्वतोमधुर आलम्बन भगवान श्रीकृष्ण और मधुर उपासना की भावमूर्ति वृषभानुसुता का कीर्ति गायन मधुर भक्ति भावना के अन्तर्गत विशेषरूप से हुआ है, जिसमें रीतिकालीन प्रभाव परिलक्षित होता है। मानव मन की चंचलता जीवन के उत्तरार्द्ध में क्रमशः कम होने लगती है और वह ईश्वर की ओर उन्मुख होता है। दास्य भक्ति-भावना की फागें फागकार के इसी भाव की अभिव्यञ्जक है।

संदर्भ

१. श्री युगल सिंह जी खीची—भक्ति का मनोविज्ञान (भक्ति अंक-कल्याण) पृ० ३०५, १९५८।

२. श्री पं० शिव शंकर जी अवस्थी शास्त्री—भक्ति (भक्ति अंक-कल्याण) पृ० २४७, १९५८।

३. श्री युगलसिंह जी खीची—वही, पृ० ३०५।

४. वही, पृ० ३०७।

५. डॉ० के० भास्करन नायर—हिन्दी और मलयालम में कृष्ण-भक्ति काव्य पृ० १३३।

६. श्री रतनलाल नामदेव 'रत्नेश' छतरपुर के सौजन्त से।

७. पं० श्री गिरधारी शुक्ल छतरपुर के सौजन्य से।

८. डॉ० मुन्शी राम शर्मा—भक्ति का विकास, पृ० १३०।

९. स्वामीजी श्री सनानन्द जी देव—भाव भक्ति की भूमिका-कल्याण भक्ति अंक, पृ० ४००।

१०. श्री रतन लाल नामदेव 'रत्नेश' के सौजन्य से।

११. वही।

१२. स्वामी जी श्री सनानन्द जी देव, वही—पृ० ४००।

१३. डॉ० के० भास्करन नायर वही, पृ० १४७।

१४. स्वामी जी श्री सनानन्द जी देव, वही, पृ० ४०१।

१५. डा० के० भास्करन नायर, वही, पृ० १४७।

१६. श्री मद्भागवत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० ३३६।

१७. श्री रतन लाल नामदेव 'रत्नेश' के सौजन्य से।

१८. डॉ० मुन्शीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ० १२८।

१९. डॉ० दीन दयालु गुप्त, अष्ट छाप और बल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० १९८।

२०. डॉ० के० भास्करन नायर, वही, पृ० ११३।

२१. श्री जुगल किशोर घोष, चरखारी के सौजन्य से।

बसारीदरवाजा, छतरपुर

फागों में बुंदेली संस्कृति

—प्रमोद पाठक

लोकगीतों में 'फाग' एक ऐसी विधा है, जो वसंत के आगमन के समय से नीम की निबौली के साथ तक चलती है। वासंती पर्व से लेकर शिवरात्रि तक यह अपनी चरमसीमा पर होती है। फागों में नृत्य और संगीत के साथ फड़बन्दी भी जमती है, तब एक के बाद एक सांस्कृतिक बिम्ब श्रोताओं और दर्शकों के समक्ष उपस्थापित होकर सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करते हैं। विचित्र सुयोग है कि जहाँ संस्कृति में लोकगीत जन्मते हैं, वहीं लोकगीत अपनी अनूठी अभिव्यंजनात्मक शक्ति के सहारे जनजीवन के समग्र सांस्कृतिक परिवेश को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित कर देते हैं।

वस्त्राभरण—बुन्देलखण्ड में वस्त्रों के अंतर्गत औरतों में घाँघरा, चोली, चूनर, धोती, तथा पुरुषों में धोती, कुरता, मिरजई आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। स्त्रियों का आकर्षण प्रायः गहनों के प्रति अधिक होता है। बुन्देली फागों में इन वस्त्राभूषणों का चित्रण बड़ी सजीवता से मिलता है। सिर पर बेंदी, कानों में कर्णफूल, झुमका, नाक में बेसर, गले में साँकर, गजरा, हार, हाथों में ककना, दोहरी, कमर में करधौनी, पैरों में पैजना, झाँझें, बिछिया, छल्ला आदि विशेष महत्व रखते हैं—

बिसरै ना मोय हलन दुर की, बेसर की गूंज तनक मुरकी।
दस ऊँगरी दस मुँदरी सोहें, बजन पैजना के सुर की।
कानन भर-भर करनफूल हैं, गोरे गाल साँकर लुरकी॥
नैनन भर-भर सुरमा सोहै, भरी माँग सुभ सेंदुर की।

ये वस्त्राभूषण सौन्दर्य को तो द्विगुणित करते ही है, उस स्त्री विशेष की पारिवारिक सम्पन्नता- विपन्नता को भी प्रगट करते हैं। यदि कोई स्त्री आभूषण

नहीं पहनती, तो पड़ोसिनें उसके लिए कैसी-कैसी अठकलें लगाती हैं, और व्यंग्य-बौछार कर आहत करती है, देखिये तो—

दुर बिन फीकी लगै जा मुइयाँ, कायै परोसन गुइयाँ
कै तुमने गानें धर राखी कै तुमरे है नइयाँ।
लैकें दाम पैर आ जल्दी जइये फेर रसुइयाँ।
गंगाधर क्यें दूर न-जानै, सुनरा बसी अथैयाँ॥

जूनागढ़ की सड़ियाँ चंदेल संस्कृति से लेकर उत्तर रीति-संस्कृति तक राजसी संस्कृति में विशेष रूप से प्रचलित रही हैं।

जूना भौजी लैन गुलाबी, ओढ़ खड़ी भई भाबी।
मजेदार खिल रही बदन में, चुबो परत दिन आबी।
भौवउ नौनो लगै पैरतन, देख तुम्हें सुखयाबी।
जबसें नजर लगी गंगाधर, तबसें भई बेताबी।

एक तो जूनागढ़ की साड़ी और दूसरे सुकुमार और मादक सौंदर्य के शृङ्गार की शालीनता में वृद्धि करने वाला गुलाबी रंग भला क्यों न बुन्देली ललनाओं को प्रिय हो। इसी प्रकार और भी वस्त्रों का वर्णन फागों में हुआ है।

बिसरै न चलन कँदेला की, दयें झोंक जुबन अलबेला की।
गोटादार हरीरी अंगिया, बेल भरी चोबेला की।
आदी डरी भुजन के ऊपर कोर लद्दाऊ सेला की।

'गुदना' गुदवाने का प्रलचन ग्रामीण जनजीवन में आज भी प्रचलित है। ग्रामीण बालाएँ इन्हें स्वर्ग प्राप्ति का आवश्य साधन भी मानती हैं। इसीलिए वे अंग-प्रत्यंगों में राधा-कृष्ण, रामसीता की झाँकियां तथा विविध प्रकार के फूल गुदवाती हैं। कुछ विशेष अंगों पर गुदवाये गये गुदने फागों में अपना विशेष स्थान बनाये हुए हैं—

गुदना लगत गाल पै प्यारौ,
हमखाँ रजऊ तुम्हारौ।

प्रेमी मन प्रियतमा का सान्निध्य प्रतिक्षण चाहता है, किन्तु यह सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं होता। इसीलिए वह प्रियतमा का आभूषण बनना चाहता है ताकि वह प्रतिक्षण सामीप्य लाभ ले सके।—

साँकर करनफूल के होते, इन मुतियन कोतें।
बैठत उठत निगत नेहुरत में, परे गाल पै मोते।
राते लगे माँग के नेंचें, अंग अंग सब मोते।

संस्कार—जन्म, विकास और मृत्यु जीवन के शाश्वत परिवर्तन हैं। व्यक्ति आदर्श सामाजिक जीवन व्यतीत करे, इसलिए बुन्देली संस्कृति में विविध संस्कारों का विधान है। फागें यौवन के मदमाते क्षणों से अधिक सम्बन्ध रखती हैं, इसलिए फागों में विवाह संस्कार को ही विशेष महत्व मिला है। आज के समाज में कुछ दोष आ गए हैं जैसे बाल-विवाह और अनमेल विवाह। फागों में इसका चित्रण देखिये—

का सुख भओ सासरे मइयां, हमें गये को गुइयाँ,
परबू करै दूध पीबे कों, सास के संगे सइयाँ।
दिन भर बनी रात संकीरन, चढ़ै ससुर की कइयाँ।
भर-भर देबै करै दूर सें देखत हमें तरइयाँ।

ऐसे स्थलों पर फागकार दोषों को भी गिनाने में नहीं चूके हैं। मृत्यु परम सत्य से एकाकार की घड़ी लाती है, इसीलिए बुन्देली संस्कृति में यह संस्कार भी उतना ही महत्व रखता है जितना कि जन्म और विवाह संस्कार। चूंकि लौकिक व्यामोह और स्वजनों से विछोह के कारण मृत्यु प्रियकर नहीं है, इसलिए फागकार इसका सम्बन्ध गौने की विदा से जोड़ते हुए कहता है—

इक दिन होत सबई कौ गौनो, होनौ औ अनहोनो।
जानें परत सासरैं साँसऊँ, बुरओ लगै चाय नौनो।
जा ना बात काऊ के बस की, हँसी मचै चाय रोनो।

लोक-विश्वास—देवी-देबता, पीर-पैगम्बर, टोना-टोटका आदि पर विश्वास करना बुन्देलखंड में बहुत प्रचलित है—पनघट पर जाती हुई रूपवती नायिका को एकाएक नजर लग गई, उसका प्रभाव देखिये—

लचकी करहाई जल भरतन, नीची गरदन करतन।
ना मालुम काहू पापी की निघा बदन पर परतन।
खाकें झोंक गिरी तिरछौंही, बनी नहीं डग धरतन।

नजर लग जाने पर गुनिया या तांत्रिक अपनी मंत्र-तंत्र-विद्या से नजर को उतारते हैं, इन सभी स्थितियों का चित्रण बुन्देली फागों में मिलता है—

नौनें नई नजर के मारें, रातीं रजउ हमारें,
रोजउ रोज झरैया गुनिया, दस-दस बेरा झारैं।
मंत्र पढ़ाकें लट बंधवाई, जंत्र गर में डारें,
बिधना उदना अलफ बचानै, जिदना पटियाँ पारें,
ईसुर रोजउ रजउ के ऊपर राई नौन उतारें।

इसके अतिरिक्त भाग्य पर विश्वास, पूर्वजन्म पर विश्वास, ईश्वरी सत्ता की सर्वोपरिता आदि पर विश्वास फागों में देखने को मिलता है।

लोकादर्श—लोकादर्शों की यों तो कोई सीमा नहीं है, फिर भी कर्मशीलता उदात्त मानवता, पत्नीव्रत धर्म और पतिव्रत धर्म, आराध्य और प्रेमी के प्रति एकात्म भाव आदि सांस्कृतिक मूल्यों का वर्णन फागों में हुआ है। बुन्देली संस्कृति में विवाहित स्त्री के लिए सोलह-शृंगार का विधान है लेकिन उसका शृंगार तभी अच्छा लगता है जब पति घर पर हो—

बाँके नैन कजरवा आंजौ, बलम बिना ना साजौ।
दुलहन घरै दिखैया को है, वौ परदेस बिराजौ।
आई बड़ी बड़न कें ब्याही, अपने कुल खाँ लाजौ।
करती कौन काम का कहिये, कजरौटी न माँजौ।
साजौ नई लगत है ईसुर, बे-औसर कौ बाजौ।

बुन्देली संस्कृति के अनुसार पति के परदेस-गमन पर यदि स्त्री शृंगार करती है, तो कुल की मर्यादा जाती रहती है। इन स्थलों पर फागों में उपदेशात्मकता प्रधान हो गई है—

मित्रता का आदर्श तभी उपस्थित होता है, जब विपत्ति में भी वह साथ दे। कर्मशीलता बुन्देली संस्कृति का प्रमुख अंग है। यहाँ पुरुष ही क्या, ललनाएँ भी कठोर परिश्रम करती हैं यहाँ तक कि जीवन के शृंगारिक और मादक क्षण भी कर्म करते-करते बीत जाते हैं, तभी सौंदर्य-भोगी मन खीझ उठता है—

ऐंगर बैठ लेओ कछु कानें, काम जनम भर रानें।
सबखाँ लागो रात जियत भर, जो नई कभउँ बड़ानें।
करियो काम घरी भर रै कैं, बिगर कछू नहिं जानै।

इसी प्रकार 'रथ ठाड़े करौ भगवान, तुम्हारे संगै चलें बनवासा खाँ' लोकगीत में आराध्य के प्रति सर्वस्व समर्पण का भाव व्यंजित हुआ है।

लोककला—नृत्य और संगीत संस्कृति के पुरातन और अखंड तत्व हैं। बुन्देली फागों के साथ एक विशेष प्रकार का नृत्य प्रचलित है, जिसे 'राई' कहते हैं। इस नृत्य में पुरुष गाता है, बेड़िनी नृत्य करती है। राई में केवल एक ही धुन होती है। उस धुन में फागों को गेय बना लिया जाता है—

नैना रंगरेजिन नै मारे, कर दए प्रान दरारे,
दबे रात अलफा के भीतर, जुबन दोउ अनियारे।
गिरवी लेत दिखाने हमखाँ, तोरे छूटा कारे।
ईसुर बड़े भाग हैं उनके, जो इनसें ना हारे।

कहीं कहीं शुद्ध लौकिक और कहीं पारलौकिक लीलाएँ इस नृत्य के आधार बनते हैं संगीत की दृष्टि से फागों की धुन एक अजीब मस्ती रखती है। छन्द शास्त्र के अनुसार फागों को सार, नरेन्द्र या ललित पद की श्रेणी में रखा जाता है। इनमें सुख-दुख, हास-परिहास, मिलन-बिछोह आदि सभी संवेग लोक-रागिनी बनकर मुखर हो उठे हैं। कहीं शुद्ध शृंगारी चित्रण हैं, तो कहीं शुद्ध भक्ति परक। किन्हीं-किन्हीं फागों में बड़े थोड़े से शब्दों में समग्र जीवन-दर्शन मुखारित हो उठा है—

मोपै झपट कैं बोलो नहिं जाय, ननद बाई निर्मल फूल कटैया कौ।
रामा कगदा हो तौ बाँचिये, करम न बाँचे जाँय, ननद
रामा ताला हो तौ जुर पाते, समुन्द न पाटे जाँय॥ ननद०॥
रामा सम्पत हो जुर बाँटिये, बिपत न बाँटी जाय॥ ननद०॥

सांस्कृतिक परिदृश्य—सांस्कृतिक परिदृश्यों में राम और कृष्ण-विषयक लीलाएँ विशेष महत्व रखती हैं। राम और जानकी की सरस लीलाएँ जहाँ मर्यादा विहित पूज्य भाव से प्रेरित हैं, वहीं राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण विषयक लीलाएँ लोकरंजक भाव से प्रेरित होकर जीवन के शृंगारिक पक्ष से इतनी घुलमिल गई हैं कि लौकिक नायक-नायिका और राधा-कृष्ण में कोई भेद ही नहीं रह जाता, या यों कहिये कि हर नायक गोप तथा कृष्ण और हर नायिका गोपी या राधा बन जाती है। इसीलिए रसिकराज नटनागर कृष्ण और रसमंजरी राधिका फागों के अधिष्ठाता और अधिष्ठात्री बने हैं—

कारी सारी में तक मारी, मारी भर पिचकारी।
पिचकारी के लगत राधिका, चोर बोर भई भारी।
भारी भीर भई सखियन की, छेंक लए गिरधारी।
धारी धरी मलो मुख रोरी, कयें वृषभानु दुलारी।
लागी पकर धाय मनमोहन, नर सें कर देव नार।
नारी पै गंगाधर इतनें, भौत करी अधिकारी।

राम और जानकी के होली दृश्य दूसरे प्रकार के होते हुए भी मस्ती और उल्लास से आपूरित है—

होली खेलें राम रनधीरा, होली खेलें राम रनधीरा।
राम लक्ष्मण भरत शत्रुघन, अंगद और महावीरा।
रंग गुलाल लिये सब डोलें, भई अवध अति भीरा।
झाँज मँजीर बीन डफ बाजै, ढोलक और मंजीरा।
डारैं रंग भरत रिपुसूदन, लछमन मलैं अबीरा।

पनघट के दृश्य, षोडषी बालाओं तथा देहातियों के चित्र बड़ी सजीवता से फागों में अंकित हुए हैं।

समग्रतः फागों में बुन्देली संस्कृति का चित्रण बड़ी सजीवता से हुआ है। फाग केवल ग्रामीण संस्कृति तक ही सीमित न होकर परिनिष्ठित संस्कृति को भी उजागर करते है। इसीलिए रूप-सौंदर्य से लेकर ऐन्द्रिय उत्तेजना तक के दृश्य तथा विशुद्ध ईश्वरोन्मुख दृश्य, जनजीवन के परिवेश, उनके विश्वास, इच्छाएँ, कलाएँ आदि सभी फागों में मुखरित हो उठे हैं। फागों में बुन्देली संस्कृति के चित्रण हेतु चित्रमयी मुहावरेदार लालित्यमयी बुन्देली भाषा का सहारा लिया गया है। इन फागों को वाणी प्रदान की है, ईसुरी, गंगाधर, ख्याली, युगलेश, भुजबल तथा अन्य अज्ञात कवियों ने।

शोधछात्रा, अवधेश प्रताप सिंह
विश्वविद्यालय रीवा, पुरवा, छतरपुर।

रस की पिचकारीं सीं लागें
जे बुन्देली फागें

•

पुराने और नये फागकारों की बिल्कुल नयी फागें, नयी पिचकारियों की तरह रसरंग से भरी हुई। आज की आस्था की राधिका और उनकी सखियों को अपने-अपने रँगों से सराबोर करने के लिए आतुर। उनकी धारों से आपकी राधा यदि थोड़ी सी भीज गई, तो क्या यह माना जाय कि इन पिचकारियों का रंग पक्का है और यह फागों की फाग सच्ची है।

—सम्पादक

ईसुरी-गंगाधर की संयुक्त फाग

ताके चरण कमल पद ताके, ता वृषभान-सुता के।
ताकी मूरत स्याम सुंदरी संग रात ललिता के।
ताकी फागें कयें गंगाधर रंग लेत रस्ता के।
ताई वृच्छ तर मिले ईसुरी ता पत्ता-पत्ता के॥

[यह फाग श्री मोतीलाल बिलैया, मऊरानीपुर को स्व० गंगाधर व्यास की ससुराल के परिवार के श्री जैतराम धमैनिया, मऊरानीपुर से प्राप्त हुई है। श्री धमैनिया का कथन है कि फाग की तीन पंक्तियाँ गंगाधर-रचित है और चौथी पंक्ति ईसुरी की पूर्ति है। लेकिन फाग से ऐसा प्रतीत, होता है कि उसकी रचना किसी तीसरे फागकार ने की हो। फाग यथावत् जो भी हो, उद्धृत है।—सम्पादक]

ईसुरी

जा जुग रीत न जानों नये की, कलजुग के उमसये की।
होजै भेंट मित बैरी सें छाती सें लग लये की।
सीस चक्र पै है असवारी जुर कें भीर अथये की।
देत पान उर कात ईसुरी राम राम दसरये की॥

•

अपनी का काऊ सें कानें, कये सें का मिल जानें।
मुंदी रहन दो पुरत न खोलो को बदनाम बखानें।
जैसो तुमनें करी रजउवा काये हमें गम खानें।
जा थैली की चोट ईसुरी बनियाँ कौ दिल जानें॥

•

सुंदर सेत सरद की चंदा, रास रचो गोविन्दा।
सेत उड़ाई सेत बिछाई सेत चाँदनी वंदा।
सेतै कली खिली सी दमकै अली करै आनंदा।
जेबर सेत सेत पोसाकें सेत सुमन के फंदा।
ईसुर सेत सुपेती की सुख कृष्णचंद्र मकरंदा॥

•

परगओ बेइमानी कौ पारी, को करहै निपटारौ।
परपंचन में पंच जुरे हैं करो न वारौ न्यारौ।
ढुरक परत हैं ओई ओर खाँ तको चीकनौ दुआरौ।
कात ईसुरी चल उठ चलिये दिखत दार में कारौ॥

•

जीकौ होत बिधाता डेरौ, कोऊ नईं होत सगेरौ।
जोरत बेता एक परत जब हाँत भरे कौ फेरौ।
जीके अदिन ऊपरई आ गये दालुद्दर नें घेरौ।
मारे मारे फिरत ईसुरी कोउ नईं करत निबेरौ॥

[डा० नाथूराम चौरसिया, पिपट के सौजन्य से]

बागन भये बसंत अबैयाँ, न जा बिदेसै सैयाँ।
पीरी लता छता भई पीरीं पीरीं ललित कलैयाँ।
सूनी सेज नींद न आबै बिरहिन गिनै तरैयाँ।
तलफत रात रैन दिन सजनी का है राम करैयाँ।
ईसुर कयँ समझा देव इनखाँ परों तुमारी पैयाँ॥

•

रजुआ जब ठाँड़ी भइंदोरें, दयें काजर की कोरें।
हँस हँस कें बतकाओ करती लगीं डरीं रस डोरें।
झूना में हो हमनें देखो मुसक्यातीं मुख मोरें।
ईसुर कहत मिली न हमखाँ अब रस में बिष घोरें॥

[श्री दंगलसिंह, छतरपुर के सौजन्य से]

तिरिया रैन गई सुख पाबै, केसव सुतैं मनाबै।
कर सिंगार बैठ छज्जा पै कर कंकन झनकाबै।
अचरा लखत स्वान की मूरत उरगनपतिहिं दिखाबै।
ईसुर करै चरित जो ऐसौ कौन नायका काबै॥

[श्री कलू मैमार, छतरपुर के सौजन्य से]

घर में नाज नई खैबे खौं, ना बखरी रैबे खौं।
बड़ी सान सें लेंय तकाजौ ना पाछूंदैबे खौं।
नौंकदार हैं बड़ी बात के चूकत ना कैबे खौं।
ईसुर अंतगाँव भग चलिये उतै न कोउ लैबे खौं॥

[श्री मोतीलाल बिलैया, मऊरानीपुर द्वारा]

गंगाधर व्यास

मन सें कैसें होत निआरे, ऐसे परम पिआरे।
सोउत जगत दृगन में झूलत, बिसरत नईं बिसारे।
बस नइँ चलत इनें कर लेती दोइ नैनन के तारे।
भर लेती मन मंदिर सजनी नई खोलती द्वारे।
गंगाधर मन बसौ हमारे जसुदानंद दुलारे॥

●

जौ घर बिगरो बिन बिगरायें, सौत सौत के आयें।
मगरे सें कउआ ना उतरें रातीं न्याव मचायें।
दिनबूड़े ब्यारी की बेराँ फिरतीं डंक उठायें।
दुबदा में जी परो बलम कौ नाँय परें कै मायें।
गंगाधर कीसें का कइये पचत न रोटी खायें॥

[श्री दंगलसिंह, छतरपुर के सौजन्य से]

जिन जाव द्वारकै गिरधारी, कर जोर कहैं राधा प्यारी।
तुम बिन नाथ तुमारे ब्रज की को कर सकहै रखवारी।
कुमला जैहैं लता कुंजन की मुरझा जैहैं नरनारी।
गंगाधर वृषभान-सुता की अँसुअन भींज गई सारी॥

●

राधा खाँ मोहन समझावें, हम देख द्वारका में आवें।
बोध करें रइयो गोपिन खां नरनारी ना दुख पावें।
दिन दस बाद तुमारी खातिर ऊधौ जू खाँ पहुँचावें।
कंस पछार लौट घर आहें गंगाधर कीरत गावें॥

●

भासी केसर कंस प्रभा सी, भासी हेम-लता सी।
तासी नहीं और ब्रजबनिता रूप पयोधर रासी।
रासी सकल गुनन की आगर नागर सिंधुसुता सी।
तासी और दृगन नहिं आई कयँ गंगाधर भासी॥

[श्री कलू मैमार, छतरपुर के सौजन्य से]

जिनखों खानें और कमानें, कैसें जुरत खजानें।
माया जोर धरें घर भीतर कहौ काये के लानें।
मरती बेराँ संग न जैहै देख देख पछतानें।
गंगाधर ईसुर लयें ठांड़ो जीखाँ जितनौ चानै॥

●

दै गई दगा दोस्ती करकें, बातन में मन भरकें।
आवें रोज तुमारे लानें ऐरौ करें खबर कें।
बातन में फँस गई मुनैया जैहै कहाँ निकर कें।
गंगाधर बेईमान बदल गई सिर पै गंगा धर कें॥

[श्री मोतीलाल बिलैया, मऊरानीपुर द्वारा]

● रसिया

दोइ नैन गुलाबी कर आईं, भुनसारें उनीदी घर आईं।
बिथुरी माँग उलट गइँ पटियाँ गालन गुलेरीं पर आईं।
टूटी लर बेसर बल खा गइ कर कीं चुरियाँ झर आईं।
ढरक गओ नैनन कौ कजरा बेंदी उतइँ बिसर आईं।
रसिया रात जगीं मोहन संग उनईं लौं मन धर आईं॥

●

जौ तन हो गओ सूक छुआरौ, नेहीं नेक निहारौ।
काया भई सूक कें पिंजरा ऊसइ हतो इकारौ।
लिपटी खाल हाड़ के ऊपर मकरी कैसो जारौ।
ना मासे भर माँस बदन में नइयाँ रकत फुआरौ।
रसिया कहें आस मिलबे की कड़ै न हंस बिचारौ॥

●

पाती रुच रुच कें लिखवावै, सुघर लिखैया चावै।
घुन भइ जात बलम धन तोरी गवन वेग लै जावै।
जोबन भये दोउ मदवारे आंकुस आन दबावै।
रसिया कहै किले अपने पै और बैठ ना पावै॥

[श्री दंगलसिह, छतरपुर द्वारा]

● बिन्द्रावन तिवारी

मोहन सोच राधका दुबरी, मरत मरत सें उबरी।
पटरानी जोगन बन बैठी राज करत है कुबरी।
साले सौत चून की बा फिर कालों ऐंचैं सुगरी।
चुरियां बरा भई बिन्द्राबन जब पैरी तीं चुभरी॥

●

हमसें रजऊ ईर्षा गोड़ें, काम परें मुख मोड़ें।
अनहित करें पुरा पाले में आन पुरा हित जोड़ें।
एकन के संग सब सब रातन जांय बांध कें होड़ें।
बिन्द्राबन अटके ना रैहैं हैं सवार दो घोड़ें॥

● बलदेव प्रसाद पांडे

जो कोउ हमें हमारी चावें, पलभर ना बिसरावै।
जैसें प्रीत लोह चुम्बक की आंखन सबै दिखावै।
ज्यों सोने में मिलत सुहागा तनक नई बल खावै।
बल देओ बल्देव की हेतन जुग जुग राम जिवावै॥

[श्री मोतीलाल विलैया, मऊरानीपुर द्वारा]

● द्विज कान्ह

चितवन में टौना डार गई, मौं चुअत पसीना नार गई।
करकें सैन तीर सौ दै गइ मदन मरोरन मार गई।
जबसें नेह लगो है तुमसें रकत मांस तन गार गई।
कयें दुज कान हला कें बेसर खजुराहो की हार गई॥

●

बेंदा दै गोरी गजब करो, बिसरै ना जबसें नजर परो।
बनो बिसाल दीप सौ दीपत बिच बिच पीरो लाल भरो।
पन्नालाल लगे नये मोती सांचे कैसो ढ़रन ढ़रो।
घूंघट में दामिन सी दमकै बीचै बूंदा लाल धरो।
कयें दुज कान नजर के जुरतन स्यामलिया कौ चित्त हरो॥

● मनभावन शुक्ल

बिगरे बेईमानन में परकें, धोके में हित करकें।
जानत नहीं हते गौघाती इनकी अंतस भरकें।
राखें रहे प्रान सौ प्यारो सब रस सुपरस करकें।
सौंपो सीस आपनो हमनें इनकी गोदी धरकें।
मनभावन छल करो पछारू कर सें बांह पकरकें॥

[दंगलसिह, छतरपुर द्वारा]

दिन ललित वसंत आन लगे, अंग अंग उमगान लये।
कर अनुराग कलिन के ऊपर अली गुंज ठहरान लगे।
कीड़न लगे कीरगन जहँ तहँ करन कोकिला गान लगे।
मनभावन बिरही तन वेधन चलन काम के बान लगे।

●

ना जाव विदेसै मनभावन, रितराज लगे सुख दरसावन।
आमन मौर झौंर के ऊपर लगे भौंर चहुँ दिस धावन।
कीड़न लगे कीरगन जहँ तहँ लगे गीत कोकिल गावन।
मनभावन समझा रई हरि खां लाग लाग राधे पावन॥

●

सुन सुन हनुमान की हूंकें, रावन के मौं सूकें।
हनूमान लंका खां चल भये चरन राम के छूकें।
बहुतक जोधा लंकापुर के मड़ियन में हो ढूंकें।
लत्ता तेल पूंछ में बांधे चलें पवन की लूकें।
मनभावन कयँ पार न पाहौ तुमसे कइयक झूंकें॥

[श्री कलू मैमार, छतरपुर द्वारा]

● अवधलाल

ऊधौ ऐसी कइयौ हर सें, नंदलला गिरधर सें।
कै गये ते दस पांच रोज की वीत हैं बरसें।
खान पान निस नींद न आबै प्रान रहें दिन तरसें।
अवधलाल आंखन के अँसुआ होड़ लगा रये झर सें॥

●

बिनती मान बिदेसी मोरी, कुसल चाहियत तोरी।
मम पिय गये बिदेस बिदेसन तासों प्रीत घनेरी।
मारे गये बटोही मग में दूजें रात घनेरी।
अवधलाल प्रीतम कौ बदलौ मिलै परायी देरी॥

●

जबसें सुनी बाँसुरी हर की, नंदलला गिरधर की।
मैं जमुना जल भरन जात ती खबर भूल गई की।
कर ना देत सखी री कोऊ नास बाँस के जर की।
अवधलाल कयें छोड़ चलो अब बस्ती स्यामसुंदर की ॥
[श्री दंगलसिंह, छतरपुर द्वारा]

● खूबचन्द रावत 'रसेस'

ये मोती मुत सीप के, घूमत है मुख गोल।
डोलत आप कपोल पै, औरयें करै अडोल।
मोती डोलत है मस्तानो, रस लैकें तुव जानो।
दुर में परो भमै मुख ऊपर औरयें करै दिमानो।
हँसतन में मिल जात दसन बिच परत नहीं पहचानो।
रूप तिहारो है अमृत सम गुन में जहर दिखानो।
खूबचंद तुव ही दृग देखत तुम ही हाँथ बिकानो ॥

●

बैठी लेत अंग सेंड़ाई, कर सुध कुँवर कन्हाई।
कर कस केस कंचुकी कुच रव रुच-रुच सेज बिछाई।
कर में लयें आरसी चितवत तन पै अतर लगाई।
खूबचंद नंदलाल मिलन हित बार बार जमुहाई ॥

●

डूब गओ दिन छै घरी, पथिक न पावैं जान।
हुकुम पुलिस कौ कठिन है, कही हमारी मान ॥
मोरी मान कही गैलारे, साँझ भई ना जारे।
घर नईं कोऊ डरत अकेली लगत न पौंर किवारे।
आगे गाँव नजीक नहीं है चोर लगैं बटमारे।
आवन रात रतौंध सास कों पति परदेस हमारे।
खूबचंद मुख बहु विध हूहैं दैहों पलंग बिछारे ॥
[श्री श्रीपति सहाय रावत, जराखर, राठ (हमीरपुर) द्वारा]

● नंदलाल

नैना दोउ लाज करन लागे, जे सील सकोच भरन लागे।
जानन लगे मजा नकझक कौ तिरछी फिरन फिरन लागे।
भये रसाल मचक्क सलौने अंजन कोर धरन लागे।
तिरखौं पिया दृगन में राजै विय तन नीर झरन लागे।
कयें नंदलाल बिहाल बाल के कोमल जीव जरन लागे ॥
[श्री दंगलसिंह, छतरपुर द्वारा]

● घनश्याम दास पाण्डेय

कबलों रैहो ई बखरी में, नीव नहीं है जी में।
दिन ना रात मरम्मत चालू बनी रहत है ईमें।
तौऊ दरकन परत रात है भीत छत्त खिरकी में।
बने रहो तौलों जौलों तुम मालिक की मरजी में।
कवि घनश्याम एक दिन मिलनें नोटिस रजिस्टरी में ॥

●

नोखी काँव काँव कौअन की, भली छबी छौअन की।
सेब अँगूरन लगत न नीकी लगी चाट मौअन की।
पालत पोछन गधा गधैयन तज सेवा गौअन की।
पाके फले रसदार छोड़ कें कदर करत जौअन की।
गह घनश्याम नाम तज संगत इन जूँठन खौअन की ॥

●

बगला फूटी अँखनवारो, लीलत रात गिलारो।
मरम-सवाद ना तनकऊ जानत बुद्धिहीन मतवारो।
तैसई संगी मिले आँधरे पकरें एक किनारो।
गिरो गिलारो तामु चौंच सें चाटत लगत मुखारो।
कवि घनश्या देख सब पंछी हँसत करत चहकारो ॥
[श्री राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, मऊरानीपुर द्वारा]

● भुजबलसिंह

रंग की नई तस्वीर उतारो, जो रंग माँय पवारो।
ना धरती ना आसमान में ना पाताल बिचारो।
तीन लोक की बात न करियो जियै डार दओ तारो।
भुजबल सिंह आज के फड़ में ज्वाब देव कै हारो ॥

●

मन में भरी चली गई लाली, भई न बोलाचाली।
नारंगी से दोई जुबनवाँ माली कैसी डाली।
हममें बैर प्रीत औरन में जेई करेजै साली।
भुजबल सिंह रजऊ की चूनर प्रान खान जंगाली ॥

●

बालम हैं निरसई के मारे, ननदी बिरन तुमारे।
देस-देस के बैद जुरे हैं रोग टरै ना टारे।

घी सक्कर और दार फुलकिया सत बनवा कें हारे।
भुजबल सिंह रजउवा प्यारे ऊसई हते इकारे॥
[श्री आशाराम त्रिपाठी, कर्री द्वारा]

● **शिवराम शर्मा 'रमेश'**

हेरन हँस गाँसी सी मारी, नइयाँ तनक दया री।
नाहीं चैन चेतना तन में हित की सुरत बिसारी।
लख न पाओ घाव दओ गैरो करी बड़ी छनक्वारी।
दै गई चोट रमेस गजब की लाल टिबिकिया वारी॥

● **ठाकुर दास**

कैसें चढ़ गइ मीन पहारन, बता कौन है कारन।
कैसें मोंती फरत झुमकियन कौन बृच्छ की डारन।
कैसें मँगरा चढ़त सिखर पै बोलत मोर दहारन।
ठाकुरदास आज के दंगल कइयक गुनी निकारन॥

● **वंशगोपाल**

यारो जौ अंधेर सुनो ना पित कन्या सँग गौना।
पैलें सुता पिता नें भोगी फिर पति साथ मिलौना।
पिता संग सें पुत्र भओ है सो है जगत खिलौना।
वंसगोपाल कहैं फड़ भीतर जौ उरझा सुरजौना।

● **रघुवर**

लचकत लरम कमर जल भरतन, डरत धरत पग धरतन।
नधत न तनक कपत तन थरथर बनत न गगर पकरतन।
धरत गगर बल परत कमर पर लगत डगर डर चलतन।
रघुबर कहत लरम कर जब तक तब तक बनत समरतन।'

● **दुर्गागिरि**

गुइयाँ आये घरै न सइयाँ, बोलन लगीं चिरइयाँ।
सीतल भई माँग मोतिन की छिप गईं गगन तरइयाँ।
फूले कमल उलूक लुकाने चकई आनँद मइयाँ।
पूरब दिसै ललामी छाई सूरज भये निकरइयाँ।
कयें दुरगागिरि कौन सौत की लई सब रात बलइयाँ॥

●

प्यारी नेह के फंद परौ ना, मानों अबै करौ ना।
ऐसी चाल चलौ काऊ खाँ जामें तुम अखरौ ना।
हौ नादान अबै तुम हित कौ जानौ तरौ-सिरौ ना।
निभै नई जौलों जग कुल की लाज सरम बिसरौ ना।
दुर्गा जानबूझ खाँड़े की धार पै पाँव धरौ ना॥
[श्री दंगलसिंह, छतरपुर द्वारा]

● **मुंशीदेवी प्रसाद 'प्रीतम'**

ऊधौ भली करी उन हर नें, मनमोहन गिरधर नें।
को जानत तो अमर बेल में जे बिस के फल फरनें।
को जानत तो सरद चँद सें बिस की बूँदें झरनें।
बहियाँ छोड़ लाड़ली जू की कुबजा हाँत पकरनें।
प्रीतम निठुर स्याम सुंदर के हम कालौ गुन बरनें॥

●

तुम खाँ हम काँटे सी खटकें, निस दिन करतीं चटकें।
परकें पाँव मनावें फिर कें हम नई उन खाँ हटकें।
अटकी का जौ हम लै आवें बिन्द्रावन लौं भटकें।
तुम खाँ सूप सौंप कें प्रीतम हम हाँतन सें फटकें॥
[श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा, छतरपुर के सौजन्य से]

मोतीलाल घोष

नैना अबें चली गईं घालें, बरछी कैसीं भालें।
देखत तकत हजारन रै गये लिखी चनौर दिवालें।
कइयक गिरे तमारी खाकें ऊँचे सें भये खालें।
मोतीलाल जियें बे कैसें जिनें करेजें सालें॥

●

रसना राम नाम खाँ बोलौ, बड़ौ नाम अनमोलौ।
भूलो फिरत मोह सागर में जौ मन डोलौ डोलौ।
भव-सागर सें पार करें खाँ है आसा अब तोलौ।
मोतीलाल झपट हिरदे ते कपट किवारे खोलौ॥
[श्री हरिसिंह घोष, छतरपुर द्वारा]

फड़ में अड़ कें जोड़-तोड़ की घलें करेजें लागें

● **ईसुरी / गंगाधर**

जौ नई आई पाँउनी काँ सें, कड़ीं तुमाये ना से।
हेरत जात उँगरियन में हो कर घूँघट की साँसें।
जान परत जल्दी गँस जैहै जो कोउ ईखाँ गाँसें।
ईसुर कात जान लई मैंने रात सबई खाँ फाँसें।

●

जा नई सुघर पाँउनी बो है, त्रिभुवन कौ मनमोहै।
इक दिन जाय प्रपंची बन में सिंगी रिसैं ठगो है।
छूट समाध गई मुनियन की सो कैलास डगो है।
गंगाधर जो ईसें बरकें पूरौ सतगुर सो है॥

•

तुमने काये करी जोगनियाँ, माधव अपनी धनियाँ।
कंचन रंग चंद्रमुख बारी द्रग सर भौंह कमनियाँ।
नासा कीर दसन दिप दाड़िम रस की बीर हँसनियाँ।
कदली पत्र पीठ कटि केहर गज की चाल चलनियाँ।
ईसुर दिपत देह कौ दीपक हीरा कैसी कनियाँ॥

•

लागै नख सिख सें तन नोकौ, श्री ब्रषभान लली कौ।
केहरि कदलि सिरीफल दाड़िम गति मराल गज सीकौ।
कुंभ कूप सुक चूक ब्याल बिधु बिद्रुम बरनों कीकौ।
गंगाधर मन काये हट गओ त्रिभुवननाथ धनी कौ।

• ईसुरी / मनभावन

सुअना बालापन के पाले, मिल भर होत निराले।
दूद भात ठंडे पानी के धरे रहें नित प्याले।
अपने जान कभऊँ पिंजरा सें बाहर नहीं निकाले।
पढ़े पढ़ाये हते ईसुरी तासें भौतऊ साले॥

•

सुअना भये न गोरी धन के, पाले बालापन के।
कर कर नेह गेह में राखे सेये जैसे तन के।
हाजिर करत रही निस वासर जौन मनोरथ मन के।
मनभावन निकसे अँतस पै सद्रश स्याम ही घन के॥

• अवधलाल / मनभावन

अरजी दई राधका रानी, करनें हाँत निसानी।
पेस करी इजलास खास में मदन भूप रजधानी।
लगवा दओ वकालतनामा ललता चतुर सयानी।
अवधलाल मोहन पै कर दई राधे दिल दीवानी॥

•

वे हर रये द्वारकै छाकें, सौत कूबरी पाकें।
कै गये ते दस पाँच रोज में लौटत अबई आकें।

तुलसी गंगा दई बीच में कौल हजारों खाकें।
मनभावन भावन न आये भामिन भवन बसा कें।

[श्री कलू मैमार, छतरपुर द्वारा]

• ईसुरी / मोतीलाल

कारे सबरे होत विकारे, जहरभरे मतवारे।
कारे नाग सफा देखत में काटत प्रान निकारे।
कारे मधुकर कंजकली पै लै पराग गुंजारे।
ईसुर कात कान कारे नें नेह लगा जी जारे॥

•

कारे सब नई होत बिकारे, हमनें देख बिचारे।
एक दांस भौंरा की देखत सब दोसल कर डारे।
कारे सिंधु महाकारे तें चउदा रतन निकारे।
मोती नाम लेत कारे कौ सो सुरधाम सिधारे॥

(श्री हरिसिंह घोष, छतरपुर द्वारा)

• गिरधारी शुक्ल 'गिरधर' छतरपुर

राठौ ठाँस घरै नंदरानी, अपनो लाल सयानी।
रोकत आन गैल पनघट की भरन न पावत पानी।
ऊधम करत अनेकन विधसें कह बातें मनमानी।
गिरधारी ना बरजो सुत खां सुनलो तुमने जानी॥

•

ऐसी सुन ग्वालिन की बानी, जसुदा जी रिसयानी।
पकरे केस झपट कें सुत के डाँटन लगीं दिमानी।
रोज उरानौ काँलौ सहिये काये करत मनमानी।
फेर उरानौ आओ गिरधर सुनलो तुमनें जानी॥

• श्याम सुन्दर बादल, राठ

प्रभु जी कैसी फाग रची है, प्रकृती प्रकट नची है।
अरुण संग ऊषा खेलत है संग सुरेस सची है।
इतनी रंग रोली बरसी है धरा न तनक बची है।
का कएं श्याम फाग प्राची संग रवि की जौंन मची है॥

•

दिन भये ई फागुन के प्यारे, आतहुं काज संवारे।
जन जन मन खिल उठो सबई कौ तन सें तन लिपटारे।

मली अबीर एकता की भये दोउ दल दृग अरुणारे।
श्याम करी सरबोर प्रेम रँग उर तुमने हुरयारे।

● 'हरिदेव' गुप्त छतरपुर

रोजउँ दोरे हो कड़ जातीं, घूँघट में मुस्कातीं।
मुर मुर तकत तिरोछे नैनन सैनन तीर चलातीं।
जानी जात नहीं अन्तस की मुख सें कछू न कातीं।
दुबिधा छोड़ एक रंग राखो रहो न सीरीं तातीं।

●

गोरी की चन्दा सी मुइयाँ, बनै देखतन गुंइयाँ।
गालन ऊपर मुस्कातन में पर पर जातीं कुंइयाँ।
मधुर महीन सरस बानी लौं जैसें बोलैं टुंइयाँ।
तकत तिरोछी लगत बान सी ऊसई भौंह धनुइँयाँ।
कवि 'हरिदेव' उरज लड़ुवन पै मानौ धरीं मकुइयाँ॥

● 'अवधेश' झांसी

कान्हा अनहोनों हुरयारो, रोकें ठाँड़ौ द्वारो।
नाम श्याम तन श्याम श्याम मन श्याम कामरी वारो।
ना गुलाल ना कर पिचकारी ना अबीर गहि डारो।
ना रंग लगो तनक तन ऊपर ना कउँ बसन बिगारो।
कयें अवधेश बड़ौ अचरज भओ मन निठुअई रंग डारो।

●

तिरछी पिचकारी जिन मारौ, नीकी नजर निहारौ।
सूदौ वार परत बरछी सौ तिरछौ बनत दुधारौ।
तइपै और कान नों खेंचत दैकें रंग कजरारौ।
बड़न बड़न पै रंग चढ़ो है गोरी अजब तुम्हारौ।
कयें अवधेस बैस बारे कौ बैसई श्याम हमारौ।

● परमलाल कुशवाहा 'परम कवि', चिरगांव

जाकी मरजी जब तक ठैरौ चौकी लगी न पैरौ।
पतौ परत नईं कैसौ पंछी अन्धरा है कैं बैरौ।
सबई दुआरे खुले डरे रत कड़तन मिलत न ऐरौ।
परम काऊ ने थांय, न पाई अगम अथांयै गैरौ।

●

जब तक बँदत न बंदनवारौ, सूनौ लगत दुआरौ।
माली नें औसर के दिन कौ सबरौ ख्याल बिसारौ।

झौंका एक आम कौ होतो ढँकतो अँगन उगारौ॥
ऐसी ठौर देख पछतावें परम कहत गैलारौ॥

●

पल्ली पिल्ला परी उड़ी रई, सबरे सें सिकुड़ी रई।
आड़े टेढ़े परे बराती भीतंउ भीड़ जुड़ी रई।
सकरौदा में पांव न पसरे काया गुड़ी मुड़ी रई।
परम कहत है अंधयारे में चकिया तरें मुड़ी रई॥

● किशोरीलाल अग्रवाल 'लल्ला', छतरपुर

मोहन दै मारी पिचकारी, सखियाँ भीजीं सारी।
नई नई जा चूनर मोरी तुमने आन बिगारी।
कैसें जांय घरन खां अपने सासें दैहैं गारी।
श्याम रंग में रंग कें लल्ला रै गई सुरत बिसारी॥

●

वृज में खेलन आई होरी, बरसाने की छोरी।
नन्दगांव के छोरा आ गये कर रये होरा होरी।
गलियन गलियन खोरन खोरन चली रंग औ रोरी।
आनंद बरसो 'लल्ला' तरसो बची न जांगा कोरी।

●

काना खेलो ना तुम होरी, कंचन काया मोरी।
करिया धरे रंग का चढ़ है मैं नैनू सी गोरी।
कउआ चलै हंसनी संगै जग दैहै रे खोरी।
अच्छौ लगत तबई जब लल्ला मिल जावै समजोरी॥

● डॉ० के० एल० वर्मा 'विन्दु', छतरपुर

जौ जग रांटौ थन पकरा दओं, कांटन की झकरा दओ।
सोरा सावन 'विन्दु' उमरिया पति बूढौ डुकरा दओ।
पन्ना कौ कैकें कें हीरा माटी चुन ककरा दओ।
जीवन उटो उटाओ दुदुआ घूरे पै बगरा दओ॥

●

सूरज करी ललौईं मुइयां घर जैबे खों गुइयां।
हारी थकी मजूरन लौटी लै मोड़ी खों कइंयां।
धूरा उड़ी गैल गैलारें आई रमांतीं गईंइयां।
एक तरा लौ बंधो धरधरा सबरीं कड़ीं तरइंयां।
टप टप टपके अंसुआ गालन आए घरै न सइंयां॥

●

कैसें चुईं कजर की कोरें, हिलका हिलकी हिलोरें ।
छन छन्यात छलकत जे अंसुआ जिउरा लेत मरोरें ।
तामें कैसी तप गई भुइंयां मान लाल रंग घोरें ।
घुलघुलात बुंदियों सों अंचरा फड़तन बालम दोरें ॥

● द्वारका प्रसाद अग्रवाल 'बेचैन' जबलपुर

काये काऊ सबई सतायें, एकऊ में का पायें ।
आंख मिलायें ना सूरज सें रज को सबइ उड़ायें ।
गरे गैल में पथरन सें बच कंकरन को ठुकरायें ।
मुंह में सी सी करत रई वों सी सी ठोक दबायें ।
गरबन के भी लागत महयां अनबोलन गरयायें ।
दूबा सौ 'बेचैन' नवत जो उतनइ लोग नबायें ॥

● मन्नूलाल चौरसिया, छतरपुर

अपनो किये सुनावे रोना मेर बने गिरधौना ।
छिन-छिन रँग बदलत नई सकुचत लखत मलाई दोना ।
नित नये भेस बनाके छलकें कर रये जादू टोना ।
कोरी बातन के भभ्रा में उगा रये जे सोना ॥

●

दुल्हा बन बसंत जू आयें सकल बरात सजायें ।
झूम झूम कें भौंरा मद में स्वागत गीत सुनायें ।
हाली फूली प्रकृति दुलैया हरदी आंग चढ़ायें ।
को है को है पूंछै कोयल, जब प्रियतम घर आयें ॥

●

बिछुरन सला तुमारी आंसी, कै रइ सांसी सांसी ।
तुम बिन इतै लगी रयी मो पै बिना डोर की फांसी ।
नाव तुमारो लै लै सब कोउ रोज करत रये हांसी ।
नास होय ऊ दिन की जा दिन डोर प्रीत की गांसी ॥

● लोकेन्द्र सिंह 'नागर' समथर

टेई चोंच मढ़ादें सोनें, जब हम जैहें गोनें ।
करें भरोसो बैठो कबसें काग बोलजा नोनें ।
बिपत परी का बीती तोपै दुबको बैठो कोनें ।
मन की तौ कछु कैदो 'नागर' जो होनै सो होनें ।

●

तुमखों देख देख कें जी रये, नैनन अमरित पी रये ।
जा जीवन की फटी गुदरिया लगन लगा कें सीं रये ।
जिनको तुमसें नेव बनो तो बे तौ सबई सुखी रये ।
'नागर' उनखों जगाँ राखियो अपने गैंडे दुखी रये ॥

● हरीसिंह राजपूत, राठ

अब तौ निकरो जात न द्वारें, भेद भाव के मारें ।
कोऊ वर्ग भेद की कर रओ ठाँड़ी विषम कगारें ।
कर रओ कोऊ छुआ छूत की गहरी और दरारें ।
हरी अकेले कीपै कीपै कहाँ खुड़इया डारें ।

●

अब तौ निकरो जात न द्वारें, मंहगाई के मारें ।
देसी घी दुर्लभ देखन खों कैसें छिटकी डारें ।
लासुन प्याज मिजाज मिलै ना दारें भई कगारें ।
हरी निकर गओ सन इकयासी सूखी लेत डकारें ।

● बाबू जी खरे, छतरपुर

जब सें रितु बसंत की आई, फूल उठी फुलवाई ।
पतझर भओ कोंपलें फूटीं बनश्री यों महराई ।
नूतन बसन पैर कें जैसें नई दुलहिन सज आई ।
फूलीं लता कुंज द्रुम फूले अमराई बौराई ।
सरसिज खिले सरोवर अगनित भौंरन की बन आई ।
कीट पतंग परागन रत भये मदन लहर लहराई ।

● मातादीन 'भारती' राठ

ईसुर बात करें फागन में, गावें सब रागन में ।
सब्द सुमन बुन्देली चुन चुन बानी के बागन में ।
गूंथे हार सुरीली धुन के सुन्दर नये धागन में ।
ईसुर दर्शन जी खां दै गये गिनती बड़ भागन में ।

●

जो घर भेद भाव के मारें, जात न तनकउ वारें ।
धन निरधन की नीं पै धर रये जात पांत दीवारें ।
वर्ग भेद को लगो बड़ेरो जेई बिलोरा पारें ।
छुआछूत कौ भूतन सौ घर कैसें इयै निबारें ।
भाई भतीजो बाद 'भारती' जे है बिसम कगारें ।

● कुंजी लाल पटेल, बसारी

पहनी 'मामुलिया' नें चोली, छतियन पै अनमोली।
कर सोरा सिंगार मनोहर भरी मांग में रोली।
गलियन गलियन फिरै झमकती लयें सखियन की टोली।
'कुंज' कली सी लरौ नबेली आई खेलबे होली॥

●

खेलन फाग राग की खिचकें, फगुवारे मन बिचकें।
इंट गये बस्त्र बदन पै बाँके नये बगस सें इँचकें।
आ गये 'मामुलिया' के छैला भर-भर अपनी पिचकें।
'मामुलिया' हो गइ 'मामुलिया' राग-रंग सें सिचकें॥

● गोबिन्द प्रसाद वर्मा 'मधुकर', छतरपुर

कान्हा चलै न खेलन होरी, बरसाने की खोरी।
ग्वाल-बाल सब बनठन बैठे बाट बिलोकत तोरी।
सखियन संग राधे रंग घोरें होनै जोरा जोरी।
ऐसौ रंग डारनै मधुकर एक न जावैं कोरी।

●

बा छब अजहूँ अँखियन अटकी, नेही नागर नट की।
जमुना जल-क्रीड़ा करकें पैरन बाँ पीरे पट की।
लटकी लट बिच बिधु मुख मानों परो राहु की फटकी।
ठाँड़ी रई ठगी सी सुद रई घट की ना घूँघट की।
मधुकर प्रीत स्याम सुंदर की बिछुरे पै अब खटकी॥

● हल्काई प्रसाद 'प्रकाश', छतरपुर

कबलौ रैहौ गोरी भोरी, समझत रैहौ छोरी।
चंचल चाल चंद्र न चाहै बैठीं राव चकोरी।
बिमल नैन खंजन से पाकें लखतीं ना उन ओरी।
कात प्रकाश रँगौ प्रीतम रंग जाय न होरी कोरी॥

●

अपनी आन नहीं बिसरैबी, पूरन प्रीत निभैबी।
बिक गये एक भोग के हांतन दूजौ जोग न गैबी।
एक तुच्छ हारिल प्रन पालत हम प्रन कसत भुलैबी।
कात प्रकाश स्याम रंग रंग कें ना रंग और रंगैबी॥

दो फागें / स्व-लिपि : घासीराम चौरसिया

फाग चौकड़िया (दादरा ताल)

जो तुम छैल छला हो जाते, परे उँगरियन राते।
मौं पोंछत गालन खाँ लगते कजरा देत दिखावते।
घरी घरी घूँघट खोलत में नजर सामनें राते।
ईसुर दूर दरस के लानें ऐसे काय ललाते॥

स्थायी

×	०	×	०
ग — —	ग — —	ग — रे	ग सा सा
छै ऽ ल	छ ला ऽ	हो ऽ जा	ऽ ते ऽ
सा रे रे	सा नि़ नि़	प़ प़ नि़	नि़ सा —
जो ऽ ऽ	तु म ऽ	छै ऽ ल	छ ला ऽ
निसा रेग ग	रे ग सा	सा — —	सा — —
होऽ ऽऽ ऽ	जा ऽ ते	ला ऽ ऽ	ल ऽ ऽ
प प --	प प प	प प पध	मग रे सा
प रे ऽ	उँ ग रि	ऽ य नऽ	ऽरा ते ऽ
सा रे रे	सा नि़ नि़		
जो ऽ ऽ	तु म ऽ		

निम्न को दुगुनी लय में बजाएँ

पप पप पप	पप मम मम	गग रेसा नि़नि़	नि़नि़ सासा सासा
परे ऽऊँ गरि	यन राऽ तेऽ	जोऽ तुम छैऽ	लछ लाऽ होऽ
रेर रेर सासा			
जाऽ तेऽ लाल			

अन्तरा

×	०	×	०
प प नि़	नि़ सा —	नि़ सा —	रे ग सा
मो ऽ पों	ऽ छ त	गा ऽ ऽ	ल न खाँ
रे नि़ सा	सा — —		
ल ग ऽ	ते ऽ ऽ		
सा—ग	म प प	प प ग	ग म प
मो ऽ पो	ऽ छ त	गा ऽ ल	न खाँ ऽ
ग ग ग	सा सा सा		
ल ग ऽ	ते ऽ ऽ		
ग ग —	ग — —	ग — —	ग रेग सा
क ज रा	ऽ दे ऽ	ऽ त दि	ऽ खाऽ ते

नोट :—शेष अन्तरे इसी प्रकार बजाए जाएं।

खड़ी फाग (दादरा ताल)

दिन ललित बसंती आन लगे, हरे पात पियरान लगे।
घटन लगी सजनी अब रजनी रवि के रथ ठहरान लगे।
उड़न लगे चहुँ ओर पताका पीरे पट फहरान लगे।
बोलत मोर कोकला कूकैं आमन मौर दिखान लगे।
गंगाधर ऐसे में मोहन किन सौतन के कान लगे॥

स्थायी

×	०	×	०
सा — —	सा — रे	म — —	ग रे रे
दि न ऽ	ऽ ऽ ल	लि त ब	सं ऽ ऽ
ग — —	सा — —	रे रे नि़	सा रे रे
ती ऽ ऽ	आ ऽ न	ल गे ऽ	दि न ऽ
रे रे —	रे — —	सा — —	सा — —
ल लि त	ब सं ऽ	ती ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ
नि़ नि़ नि़	सा — —		
आ ऽ न	ल गे ऽ		
रे म म	म ग रे	ग ग ग	सा — —
ह रे ऽ	पा ऽ त	पि य ऽ	रा ऽ न
रे रे नि़	सा रे रे		
ल गे ऽ	दि न ऽ		

अन्तरा

×	०	×	०
नि़ — —	नि़ सा सा	सा नि़ सा	सा — —
घ ट न	ल गी ऽ	ऽ स ज	ऽ ऽ ऽ
रे ग रे	सा रे नि़	नि़ सा सा	सा — —
नी ऽ अ	ब र ज	ऽ नी ऽ	ऽ ऽ ऽ
रे म म	म ग रे	ग ग ग	सा — —
र वि के	ऽ र थ	ठ ह ऽ	रा ऽ न
रे रे नि़	नि़ सा रे		
ल गे ऽ	ऽ दि न		

नोट :—शेष अन्तरे इसी प्रकार बजाए जाएँ।

फगुनायी फिर गीतिका बौराये फिर गीत
राधा-रंग तन-मन चढ़ो फिरै साँवरो मीत

●

एक बार फिर राधा का रंग साँवरे श्याम पर चढ़ गया और बदले-बदले श्याम राधा को ढूंढ़ने लगे। गलियों, कुंजों और पनघटों के आस-पास। गीतिका और गीत वंशी ध्वनि में गा उठे। राधा मिले या न मिले, पर राधा का रंग मन पर चढ़ा है। आज का कृष्ण राधा के रंग से अछूता है, फिर गीत क्यों गूंजें। गीत तभी बौराते हैं, जब कृष्ण राधा के रंग में डूबता है और कभी-कभी बौराये गीत कृष्ण-मन को मजबूर करते हैं कि वह आस्था की गोरी राधा में डूबे। आप डूबें या न डूबें, पर ये गीत इसी आशा में टकटकी लगाये इंतजार कर रहे हैं। अमराइयाँ कभी तो फल देंगीं। —सम्पादक

राग बसंत

खेलत बसंत राजाधिराज। देखत नभ कौतुक सुर-समाज।
सोहैं सखा-अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन अबीर पिचकारि हाथ॥
बाजहि मृदंग डफ ताल बेनु। छिरकें सुगंधभरि मलय-रेनु॥
उत जुवति-जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूपन सरस रंग॥
लिय छरी बेंत सोधैं बिभाग। चाँचरि झूमक कहैं सरस राग॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ। ललनागन जब जेहि धरइँ धाइ॥
लोचन आँजहि फगुआ मनाइ। छाँड़हि नचाइ हा-हा कराइ।
चढ़ खरन बिदूपक स्वाँग साज। करैं कूटि निपट गइ लाज भाज॥
नर नारि परसपर गारि देत। सुन हँसत राम भाइन समेत॥
बरपत प्रसून बर बिबुध-वृंद। जय जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध बास। गावत कल कीरति तुलसिदास॥

—महाकवि तुलसीदास : गीतावली, उत्तर काण्ड, २२।

दो गीत

स्व० पं० माखन लाल चतुर्वेदी

रंग ले श्री रंग

(राग काफी, ताल धमार)

देखहुँ यौ मधुर मधु जंग
अंगनन में फाग खेलै, रंग ले श्री रंग।

करन लै पिचकारी मारत ललकि औचक अंग
भंग व्है व्है जात सोभा ललित लाल त्रिभंग
देखहुँ यौ मधुर मधु जंग॥
कर थके मनुहार बारहिंबार हा हा खाय री सखि
पुष्प वीथी कंटकन ज्यों लटपटाये 'भृंग'॥
देखहुँ यौ मधुर मधु जंग॥

फागहू के भाग जागे, राग जागे अंग, सुनु सखि,
ग्वाल-ग्वालिन रंग खेले श्याम-श्यामा संग॥
देखहुँ यौ मधुर मधु जंग॥

फाग नवीन किशोरी

(राग-काफी, ताल-दीपचंदी)

खेलत फाग नवीन किशोरी
नन्द किशोर मनावत खेलहुँ होंरी।
दोउ रीझत अनुहारत मारत
दोउ भरि भरि पिचकारी
दोउ खीझत दोउ बलि बलि जावत
वे छलिया ये भोरी
बनी बानिक यह जोरी
खेलत फाग नवीन किशोरी।
कछु अंखियन की कछु सखियन की
भीर भई चहुँ ओरी
इनने छीन लई पिचकारी
उन कीन्ही बर-जोरी
छीन ली झटकि कमोरी।
खेलत फाग नवीन किशोरी।

अति रंग-रूप चरन-पंकज लखि
मन मन चोरा चोरी
देखत झुकत लुकत फिरि आवत
कहि जय जयति किशोरी
श्याम श्यामा की जोरी
खेलत फाग नवीन किशोरी ॥

(श्री श्रीकान्त जोशी, खण्डवा के सौजन्य से)

अब तो रसिया गालो साथी

भैया लाल व्यास

होली बहुत जला ली तुमने, अब तो फाग मना लो साथी ।
कीचड़ बहुत उछाली तुमने, अब तो रंग बरसा लो साथी ॥

ऐसी होली कभी न आई धुँआधार हो गईं दिशायें ।
उत्तर-दक्षिण के अंगों की जली लालिमा भरी शिरायें ।
दानवता जलती थी पहले अब मानवता राख हुई है ।
प्रेम जले, विश्वास जले हैं, जली एकता की भाषायें ।
राष्ट्र डिगा-आस्था झुठलानी, अब भी क्या कुछ शेष रह गया ।
मूर्ति बहुत की काली तुमने, अब तो उसे उजालो साथी ॥

कीचड़ ने इतिहासों के घर इतने आदर कभी न पाये ।
ऋतु पर्वों ने सदा सहज ही सुमन सदाशय के सरसाये ।
कुटिल संधि के सरगम लेकिन ऐसी भीड़ें साध रहे हैं ।
केसर के मुख छाई उदासी, काई ने त्यौहार मनाये ।
दिल फटते है, पड़ी दरारें, घर की लाज सिसकती रोती ।
दीं हैं बहुत गालियाँ तुमने, अब तो रसिया गालो साथी ॥

जब-जब होली जली सुना हैं, दम्भ जला है, पाप जला है ।
आँच साँच पर कभी न आई मिथ्या का पुतला पिघला है ।
छली होलिका की भस्मी पर प्रहलादों के प्रण हरयाये ,
आग जहाँ पर लगी, वहीं पर सागर ने अमृत उगला है ।
विष का अति विस्तार स्वयं ही शिव की खोज किया करता है,
ईर्ष्या बहुत उगाली तुमने अब तो पतन संभालो साथी ॥

पतझड़ के दिन देखे जिसने उसने नव पल्लव उपजाये ।
पतझड़ ही पतझड़ के मौसम अब जैसे पर कभी न आये ।

धरती की बगिया उदास है, पंछी का बिरवा सूना है ,
रचनाकार कुशल हाथों ने अनरथ अपने आप रचाये ।
पत्तों का पानी उतरा है, छाया भी वीरान हो गई ,
लूट बहुत ली डाली तुमने, अब तो बाग लगा लो साथी ॥

फागुन जैसा मास कि सबको अपने गले लगाने आता ।
जला द्वेष के झाड़ कटीले नई-नई फसल उगाने आता ।
कोयल की मीठी तानों से आम्र-कुंज बौरा जाते हैं ,
इंसानों की बात वहूँ क्या जड़ में प्यार जगाने आता ।
नई कौंप के नए संदेशे फिर हमको समझाने आऐ ,
ज्वाल बहुत फैला ली तुमने अब तो उसे बुझा लो साथी ॥

—पुरवा, छतरपुर, म० प्र०

रित के राजा बरयाने

गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

सब कैबे कीं हैं कानातें ।
कोउ पीर पराई का जानें ॥

घरी भरे में हम परवस भये
जैसें फरफन्दे में फंस गये
चुनत चरेरु दो दानें ।
कोउ पीर पराई का जानें ॥

सेज बिसूरत बीतीं रातें
नग नग लागीं लाज कनातें
नैना देखत सरमानें ।
कोउ पीर पराई का जानें ॥

जुगन जुगन सें आस लगाई
कैसें खाबै रास जुदाई
रसिया केदिन रसयानें ।
कोउ पीर पराई का जानें ॥

बैर बसन्ती धीरें बै रई
अम्मा डार कुइलिया कै रई
रित के राजा बरयानें ।
कोउ पीर पराई का जानें ॥

—एफ डी १७ एमपीईबी कालोनी रामनगर, जबलपुर

कोरे मन कागद पर अनगाया गीत

ब्रजलाल मिश्र

पलकों के काजल में साजन का नाम
देखा तो लजा गई कजरारी शाम।
कोरे मन कागद पर अनगाया गीत
लिख लिख के आंचल में बांध गया मीत
जितने भी पत्र मिले आये गुमनाम।
निर्लज पुरबाई भी टोना सा मार
जा बैठी गदराई निंबुआ की डार
अलसाये हाथों ने छोड़ दिये काम।
यौवन से चुगली जब कर आया चोर
पलकों की खिड़की में झांक गई भोर
अधरों के गीत हुये मौन के गुलाम।
हल्दी की बाँहों में अनव्याहा रूप,
चँदन की महक लिये यौवन की धूप
केसरिया गंध लिये बिखरा ज्यों धाम।
झांका जो वेणी से बेला, का फूल
आँखों ने दुहरा दी फिर कोई भूल
झुकी-झुकी नजर हुई कितनी बदनाम।

—नायब तहसीलदार, उज्जैन

दर्द की अमराइयों ने फल दिये

स्वतंत्र प्रभाकर

छीन कर सुख शान्ति कोलाहल दिये,
कब समस्याओं के तुमने हल दिये।

हो गई घायल मनुज की आस्था,
आज विश्वासों ने इतने छल दिये।

मौत ने आकर सहारा ही दिया,
जिन्दगी ने टूटते सम्बल दिये।

आज मानव मन मरुस्थल हो गया,
तृप्ति ने चिर प्यास के बादल दिये।

नेह पाने की थी जिनसे लालसा,
आस के दीपक बुझा कर चल दिये।

लोचनों से अश्रु-कण झरने लगे,
दर्द की अमराइयों ने फल दिये।

हम हिमालय की तरह बाँटे गये,
एकता के हमने विन्ध्या चल दिये।

हम सरसता को तरसते रह गये,
क्यों निराशा के घने जंगल दिये।

उन अंधेरों का करें सम्मान हम,
जिन अंधेरों ने सुनहरे पल दिये।

दे रहे हैं मौन आमंत्रण हमें,
झिलमिलाते, लक्ष्य के ओझल दिये।

कड़ा की बरिया, छतरपुर

होली के रंग

सन्तोष पटैरिया

फागुनी उमंग में रंग छलकाती प्रिय
अंग-अंग संग-संग चंग सी बजावतीं।
तिय के कपोलन को मोल को करि सकै
नैन मन बैन कह चित्त को चुरावतीं॥
यौवनी अनूप धूप रूप को सुगन्ध देत
देख देख कें स्वरूप शशि को लजावतीं।
पूरबी बयारि लिये नेह की गुलाल साथ
कुंकुम औ केशर की फाग सी मचावतीं॥

●

रंग की तरंग प्रिय अंग लहराये रही
थिरक उमंग रही लोचन की कोर से।
लाड़ली के रंग में सुजान लाल ऐसे पगे
पीत-पट बँधे लाल चूनर के छोर से॥
रंग पिचकारी डारी सारी पै ऐसी खिलै
जैसे खिल जात जलजात होत भोर से।

तन रँगे मन रँगे तन तन रंगे चीर
सब ओर रंग दिखे गली खोर खोर से ॥

—नया मोटर स्टैण्ड, महोबा (उ० प्र०)

सांकरी गली की भली कसक निकारने

बाल कवि दिवाकर

चतुर सहेली से राधिका नवेली कहे,
आज मनमोहन पै मन की बिचारनें।
छांड़नें न काहू बिधि बिधि से बिधेंगे संग,
भर भर उमंग रंग अंगन पै डारनें।
कहत दिवाकर अबै आवन दे भावन कों,
गावन दे राग फाग तौलो मंद गारनें।
मनक मसूस अली सांवरे छली खां ऐन,
सांकरी गली की भली कसक निकारनें ॥

●

बन में बनितान में बजा के बांसुरी की तान,
छिपकें लतान काऊ ग्वालिनी पै टूटोगे।
सूदरी सी गूजरी पै ऊभरी उभार सान.
तीर भानुजा के नीर बीचि बीच रूठोगे।
कहत दिवाकर कै किसोर खोर साँकरी में,
हाँकरी में ताँकरी में ताक दधि लूटोगे।
वात कर कबूल कान्ह कान गह बैठ उठौ,
नहीं तौ ब्रजराज आज फाग कीच छूटोगे ॥

बम्हौरी, जिला छतरपुर, म० प्र०

रोरी मलती रही कहानी
व्यंग्यों ने पिचकारी घाली
दर्दों के मन रहे ताकते
पीड़ाओं ने मंजिल पा ली

●

बेचारी कहानी जब तक रोरी मले, तब तक व्यंग्यों ने पिचकारियों से सराबोर कर दिया। अजीब फाग है कहानी और व्यंग्य की। व्यंग्य का साथ देने दौड़े आये दर्द, पर वे ताकते रह गए और कहानी की सहेली पीड़ाओं ने अपनी मंजिल पा ली। दर्द सबको है, पर उथला-उथला। जब तक पीड़ा की गहरी आंतरिक अनुभूति नहीं होती, तब तक सिद्धि दूर रहेगी। आइए हम दर्दों और पीड़ाओं की साथ-साथ अनुभूति करें, ताकि गहराई पर जाकर फाग के आनंद की मंजिल पर पहुँच सकें। और यह तभी संभव है, जब फाग की तरह खेल-खेल कर, नाच-नाच कर अपना सब कुछ समर्पित कर दें उस लक्ष्य को पाने के लिए। जायसी की नायिका की तरह 'नाच नाच जिउ दीजिय' से अपने सच्चे प्रिय की प्राप्ति संभव है और इसी संभाविति के साथ इन व्यंग्यों और कहानियों को महसूस कीजिए।

—सम्पादक

व्यंग्यों की चुटीली धारों, कहानियों के रसरंगों और लेखों के अबीर से साहित्य का कन्हैया जब फाग खेलता है, तब मन की राधा सात ड्योढ़ियाँ पारकर बाहर निकल पड़ती है और कन्हैया के सामने 'राई' नृत्य करने लगती है।—सम्पादक

व्यंग्य जबलपुरी बुंदेली में

बसन्ते भैया

● लीलाधर यादव 'गुआल'

●

बसन्ते भैया दो बरस पहलउँ हमाये गाँव आये ते। जा बात हम कभऊँ नइ भूल सकत। का बतइये उनखे पाँउन में केसो रसाज भरो तो, उनखे आतइ केसर विकस गई, कचनारउ ललया उठो, मन्दारउ मुसकरान लगो. सरसुआ पिरया गई, आमन में बौरें हुमस आईं। और तौ और जंगलन में करोंदा, मकोरा सबई गर्रा उठे। पलासन की बातइ कछू निराली रई। सिआने कान लगे ते-ऐसो हमाई जिनगी भर हमने नें देखा हतो। का बतइये······हमने छाती ठोंक खें कई ती, जो सबरो बसन्ते भैया को परताप आय। हम का बिसर सकत हैं आजउ। वे तौ पैलईं बेरै आये ते। बस ऐंसें नोंने लगते ले के का कहिये खूबइ नोंने।

उनखों हम गमै-गमैहाँ का दैंबे लायक हैं ? पै उननें हमें खूबइ दओ······ खूबइ दओ। का बिसर सकत उनखो भासन हम ? वे तौ बिलकुल हंसा से लगत रये, बिलकुल सफेद फक्क। वे ठंड़े भये, तौ हमउ सबरे ठाँड़े हो गये। तौ कान लगे 'सब झनैं बैठ जाव, हम भर ठाड़े रै हैं।' कछू झनें तौ बैठ गये औ कछू ठाँड़े रह गये। तौ उनने हाँत जोर लये, औ ऐसें नोंने मिसरी सी घोर कें कान लगे—"आप सब झनैं हमाये मताईबाप के बरोबर हौ, सब झनैं किरपा करखें बैठ जाव, अब हम कछू बिनती करो चात हैं।'

हम गाँव-गमैहाँ शैर में रहन वान खों देई-दिवता मानत। ऐंसी नोंनी बातें हमें पाँचइ बरस में एकै बेरै सुनबे मिलत हैं, तौ हम सबई उनखे भासन सुनबे खों बैठ गये भुइयाँ पै।

बाह । बसन्ते भैया, कैसे हांत-पाँव फटखार खें, बीड़ा चटखार खें. दतौरी पीस खें, नकुआ पसार खें, अँखियाँ मटका खें, टुपिया खिसका खें तुमने भासन दओ तो । हमें तौ बहुतइ कछू आद है । ऐंसो कछू बोले ते भैया एक ही मैं "मेरे गाँव में रहने वाले परम प्रिय जन, किसानो, मजदूरो और माताओ-बहिनो । आप इस देश के मालिक हो, इस देश को पालते हो······"(बस तालियाँ पिट गईं । किसी नोंनी बात कै दई तों उननें !) उननें हाँत जोड़ लयो आगूं बोले-"शान्त हो जाइये (सब-शान्त) मैं विधान सभा के लिए उम्मीदवार हूँ । आप लोगों की तकलीफें देखकर मेरी आँखों में आँसू आते हैं ।" बे आँखें पोंछन लगे गाँव वारन की आंखन में भी सोऊ अँसुआ डबडबा आये)

हाँ तौ लम्मो-चौरो भासन भओ । आगें हम अपनी गमेंहूँ बोलियई में बतैहैं । उनखी ठाँड़ी बातें तौ हम बिसर-बिसर जात हैं ।

वे कात रये-"गाँवन में पक्की सड़कें बनैं हैं डमरहाउ, हम हंसत जात ते औ हुँकारी भरत जात ते । मोटर-आहै, पंपा लगहैं, बिजली चमक है औ न जाने का का कईती । सब मिलाखें-गाँव सरग बन जै हैं । जो सुनतइ रमुआ ने धर चिउँटिया लई मुहें । तौ मैंने कई-का हो गओ रे, काये चिउँटिया लै लई तैनें ? तौ हीरे सें कनपटी में थूथरो लगाखें कान लगो-'काये रे बब्बू मनखे किहाँ रैहैं ?' हमने ऊसें हीरे से कै दई-'सबरो परबन्धहू हैं, तें काये सोस-बिसार में पर गओ ? तौ बसन्ते भैया ने खूब कई-पानू-आनू खूबइ मिल है खेतन के लानै, नल कूपौ बनवा दैहैं । ई तरा सें गठरिअन बातें बतात रये······" । अपने चुनाव निशान मटका खें वे टर्राये—'ठप्पा सब झनन खों ऐई पै लगाउनै है ।"

फिरका सबरन खों पक्को हो गओ । ठप्पा उन्हई के निशान पै लगाउनै । बस वे तौ बखरी खों गये, खूबइ छक-छका खें पेलो औ मोटर पै चड़खें फुर्र हो गअे । औ गअे तौ गअे ।

हमतौ अपनी जात के धनी, तौ अपनी वातौं के धनी । ठप्पा लगा दओ । बसन्ते भैया मुलकी बोटन सें जीतउ गअे । हम तौ दो-बरस से उनखी रस्ता हेर रये । आपसें साँसउ बताऐं-नें पर की साल और नें आँसों । ने गाँवन में आमा बौराये, नें कौनउ फूलइ हुमसे, नें सरसुआँ पजो । सबरे जंगलन के बिरवा लपट्या गअे प्यासन के मारे । लैबे-दैबे की पर गई । परकी बसन्तन खों हमने शारदन मइया खों बिनती करी, बहुतइ हाँत-पाँव जोर खें, मना-मुनू खें कई—कै बसन्ते भैया खों एक बेरै जरूरई गाँव खों भिजवा दो, हम गाँव वारे तरस रये है उनखों देखन खों । शारदन मैया खों का कइये, कान लगीं 'गजरा-मजरा चढ़ाव हमपै तौ हमउ सुनहैं । तौ बताव हो गओ नें अंधेर जब फूलइ नें फरहें तौ गजरा-मजरा काँसे लाहें, कैसे चड़ा है ?

बसन्ते भैया नें आये, नें आये । हमनें खोज-खबर लई, तौ सुनबे खों मिलो बसन्ते भैया बड़े भारी कामन में लगे हैं । कोउ कान लगो—बे कुरसी की लराई में उरझे है । हमाई तौ बाँछें उठ परीं, हमने मूँछें चड़ाखें गाँव बालन सें कैदई—अरे हमाओ नेता कित्तो तर्राट है, देख लेव देश के लानें लराई लर परो है, परी हूहै कुरसी गाँव में कोउ गरबड़ी । बो फिर जीत है, औ जीत खें डंका बजाखें जरूरई गाँव आहै, हमें बाप-मताई बनाखें गओ तो । गाँव खों सरग बनाखें छोड़ है । जा सोसबे-समसबे की बात आय-सरग बनाबो कोउ दार-भात बनाबो नें होय । चट्टइ मँगनी पट्टइ ब्याव । ऐंसो चट्ट-पट्ट कों धातरम कोउ सीघरे नई चड़ै । अरे टैम लगत है ! गाँव सरग बनहै, तौ हमाओ भी तौ टिकानो लगानै परहै । कित्ते धातरम हैं अेके बीचों । करोड़न पसेरी गोरस बिसाहनै परहै, औ कहूँ ऊँचो-नेंचो देख-दिखा कें नदियाँ बनाखें बहाउने परहै । अभै तौ दोइ बरस भये । थोरो दिमाग लगाव । मानलो हमई कोउ ओजना बनायें अरे हमइ तौ सरकार आयें, तौ सबसें पैले आओग (आयोग) सो बनहै । बरस दो बरस में तौ आओगइ की रपट मिलत है । औ मानलो रपट आउ गई तौ ऊ रपट खों पड़बे बारे अलगइ होत हैं, वेऊ आ गअे, कहूँ कोउ बात अकल में नें चड़ी तौ ऊके लाने फिरसें आओग बैठत, तभई जाखें कछू धातरम लैन पै आओ समझौ । फिर कछू दिना उद्घाटनइ में लग जात । जैसे-तैंसे ओऊ हो गओ, फिर टेन्डर-फेन्डर भरत भराउत बरस दो बरस लगइ जात । जैसे-तैंसे धंधौ लैन पै आओ, सीघरे चढ़बे खों भओ औ कहूँ लैबे-दैबे में कोउ खरोंच अरोंच रह-रहा गई, तौ आपइ बताव अगर गाँव सरग बनानै है तौ कितो बड़ो धातरम है । पैले छिंगुरिया हेरौ फिर उमठा तरफै जाव । अभई सें ऊबन लगे । अभै हर पाँच साला भासन हू हैं । ऐंसे पाँच-दस भासनन के बाद ओजना बनबो शुरू हू है, फिर ऊमै टैम लगे है । कित्तो टैम लग है ? मूरख हौ देहाती भुस्सै तौ रहे आखर ! उतई पोंस गअे, जहाँ से रामायन शुरू भई ती अरे धीरज धरौ, तभै पूरो परहै । जब हम देई-दिवता बन जै हैं, तभई हमाओ गाँव सरग कहै है ! बस इत्तई सी बात तौ बसन्ते भैया बता गअे ते ! हमाई अकलई में जा बात देर सें चड़ी ।

—६४७, दक्षिण मिलोनीगंज, जबलपुर

फागोत्सव पर हास्य व्यंग्य

रंगभरी पिचकारी

—डॉ० कृष्ण कुमार हूंका

•

स्थान : शहर के बीचोबीच बने फुहारे के कुण्ड में भरा रंग। चारों तरफ के मार्गों से आती हुई होली खेलने वालों की टोलिया।

एक टोली गाती हुई आ रही है—

"होली आयी रे लला ब्रज के बसिया"

इस टोली के नेतृत्व करने वाले व्यक्ति का अपना ही व्यक्तित्व है। वे तथा कथित साहित्यकार है। पहले उन्होंने एक खण्ड काव्य लिखा। बाद में मालूम हुआ कि वह किसी बहुत पुरानी पुस्तक का छायानुवाद है, फिर उन्होंने एक उपन्यास लिखा जो कहा तो मौलिक गया था, पर निकला बंगला, उर्दू, मराठी, अंग्रेजी एवं हिन्दी उपन्यासों की कतरन। इसके बाद वे पत्रकार बन गए और उन्होंने एक साप्ताहिक पत्र निकाला। कहते है कि उन्होंने साल भर का चन्दा लेकर केवल चार अंक दिये। इन सबके बाद इस महारथी ने अपनी आत्म-कथा लिखना प्रारंभ किया और उसका पहला अध्याय 'उलूकनाथ का जन्म' अभी-अभी समाप्त किया है। उस टोली के और भी अन्य साहित्यकार इसी श्रेणी के छोटे मोटे महारथी है।

इस टोली के ठीक सामने से दूसरी टोलो चली आ रही है। जिसका नेतृत्व एक समाजसेबी कर रहे हैं। उनका नाम है—भाई सेवकराम जी। कहते हैं कि वे कभी पैसे को हाथ से नही छूते। पर साल मे दस-पच्चीस चंदों के लिए अवश्य निकलते है। रसीद देते है और कहते है-दान का पैसा बस झोली में डाल दो, मैं चंदे के पैसे को हाथ से नही छूता। जहां कहीं बाढ़ आई या भूकम्प

का धक्का लगा, रेल दुर्घटना की खबर छपी या कहीं सूखा पड़ा, कहीं भयानक मोटर दुर्घटना हुई या कहीं दंगा हुआ; बस–सेवकराम जी अपनी झोली लेकर चल पड़ते हैं। उनसे दूसरों का दर्द देखा नहीं जाता। छः बजे सुबह से लेकर रात्रि आठ बजे तक एक ही धुन रहती है–"चंदा चाहिए, चंदा चाहिए। बड़ा कष्ट है जनता को। चंदा दे दो, पुण्य कमा लो"---यही उनका नारा रहता है। सुनते हैं कि बगीचे के पास उनकी एक हवेली भी बन गई है, पर वे आज भी नंगे पैर चलते हैं, जूता नहीं पहनते। सेवकराम जी के साथ बहुत से चेले-चपाटी भी हैं, जो मेलों-ठेलों और साप्ताहिक बाजारों में चंदा इकट्ठा करते हैं। इनकी टोली गा रही है--

'मत मारो मोहें पिचकारी'।

तीसरी दिशा से एक नेता जी चले आ रहे हैं—बड़ा लम्बा-चौड़ा कुरता पहने है, जो घुटने के नीचे तक लटक रहा है। चप्पल चर्मालय की नहीं–बाटा की है। बालों को बहुत दिनों से कटवाया नहीं है, इसलिए हिप्पी से बन गए है। अपने से छोटे से हमेशा कहा करते है कि तुम क्या जानों–मेरी त्याग और तपस्या। सत्रह बार जेल गया हूं और पिकेटिंग तो इतनी की है कि उस जमाने के हर शराब के ठेकेदारों को मेरा नाम याद है।' आप पहले ही चुनाव में चित्त आ गये तो बोले—'मैं क्या करूं पार्टी के कारण हार गया। इसलिए पार्टी बदल डाली।' दूसरे चुनाव में फिर खड़े हुए तो फिर हार गये। बोले—ये मनहूस कानटेवनसी ही गलत है।' अब की बार कानटेवनसी ही बदल डाली और पार्टी भी। तो तीसरी बार जमानत ही खो बैठे। बड़े झल्लाये और बोले–'मुझसे गलती हो गई। मैंने सत्ता विकेन्द्रीकरण को नहीं देखा। सीधा लोक सभा में जाना चाहता था। अब अगले बार मे नगरपालिका से अपना झंडा गाडूंगा और तब लोक सभा में जाऊंगा। लोक सभा में पहुँचने के लिए बीच की सीढ़ी विधान सभा वाली भी चढूंगा।' बड़े सहजे से कहा करते हैं—

'सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है'

उनकी टोली के सभी साथी नेता हैं। कोई चौराहे के रंगदार है, तो कोई किसी गली का। कोई किसी मुहल्ले का रंगदार है, तो कोई किसी टोली का। इनकी टोली से आवाज आ रही है।

'मेरा रंग दो बसंती चोला......।'

अब चौथी दिशा से एक बड़ा-सा दल चला आ रहा है, जिसमें सब नौजवान ही नजर आते है। शक्ल सूरत से लगते है कि सब विद्यार्थी हैं। वे गा रहे है—

'हम मस्तानों की क्या हस्ती
हम आज यहाँ कल वहाँ चले'

कहते है कि इस झुण्ड मे कोई किसी का फालोवर नहीं। सब नेता ही नेता है। सबने भंग पी रखी है, इसीलिए अपना अपना ही राग अलाप रहे है। एक कह रहा है—'होली अच्छी चीज है इसमे सब जल जाता है। मैं हर साल होली मे अपनी सारी पुस्तकें जला डालता था और केवल गाइड के कुछ पन्नो को पाकिट में रखकर आज एम० ए०, एल-एल० बी० हो गया हूँ।' दूसरा कह रहा है कि मेरा तो केवल कालेज मे नाम लिखा था, न फीस देता था, न पढ़ता था। प्रिंसिपल को रंगदार चाहिए था, सो बिना पढ़े और बिना फीस के ग्रैजुएट बन बैठा। तीसरा फरमा रहा है'—पढ़ना लिखना मूर्खों का काम है। मै तो केवल यूनियन का काम करता रहा। और वो रंग बाँधा कि मेरी कारगुजारी से सारी पहाड़ी गूंज उठी। कौन पैदा हुआ है जो मुझे फेल करता।' सभी नशे में है। वे नही जानते है कि वे क्या बक रहे हैं और उसमें कितना सच है और कितना झूठ ?

चारो टोलियाँ फुहारे पर आती हैं और खूब रंग गुलाल खेलती हैं। सब रंग से सराबोर है और सब समझते है कि हमी शहर के बांके हैं।

१६२, कोतवाली वार्ड, जबलपुर

दिव्याङ्गना मना लिया अग्निपर्व ?

● कांति खरे

●

छलांग भरने की कोशिश में घायल हिरन जैसी अवश निगाहें कभी आजू देखती, कभी बाजू। 'बरस कमल सित श्रेनी' वाली नजर में अब निराशा के बादल बरस रहे थे, आँख के कोने तरल उठे थे। हाथ की जयमाला हाथों के काँपने के साथ काँप जाती थी, हिल-हिल जाती थी, उन्नत वक्ष पर पड़ा हुआ, सोने के तारों और मोतियों के भराव से भरा हुआ दुपट्टा भी उच्छवासों के साथ ऊपर नीचे हो रहा था।

ओंठ ग्लानि, लोक लाज और पराजय की आशंका से थरथरा जाते हैं। दाँतों की हीरक कतार ने ओंठ को दबा कर ठंडी निश्वासों को भीतर ही रहने पर बाध्य कर दिया है। निकलने से रोक दिया है।

परीक्षा भी कठिन है। चौरस मैदान में बीचोंबीच स्वयंवर भूमि बनाई गई है। मंच पर लोहे का विसाल दैत्याकार पुरुष बनाया गया है, जिसका मुँह बहुत बड़ा है। उसके खुले मुँह में एक बहुमूल्य मणि रखी है, जिसके चारों तरफ खड़ी कटारों वाला चक्र तेजी से घूम रहा है। दैत्य के पाँवों के पास आग की भयानक लपटें हैं। कहते हैं यह मणि विजेता को अजात शत्रु बनाती है। और स्वयंवर की शर्त है उस मणि को पाना।

चारों ओर मचान बँधे हैं। आमन्त्रित राजा-महाराजा अपनी अपनी हैसियत के अनुसार बैठे हैं। आसन सोने के भी हैं, चाँदी के भी है, चंदन के भी। राजा उठते, सुन्दर सलोने राजकुमार उठते, बाजे, ढोल, नगाड़े, भेरी बज उठते, शोर होता और बस असफल हो जाने पर सब शांत हो जाता। राजकुमारी दिव्याङ्गना बुझती लौ की तरह थराथरा जाती टूटी बेल सी नीचे झुक जाती। धीरे धीरे अपराह्न हो आया।

तभी दाहिने पार्श्व की सिंहासन पंक्ति से एक भयावह राजा उठ कर आता दिखाई दिया, मागधों ने उसका नाम और उसका राज्य घोषित किया। काला भयानक शरीर, शरीर पर सघन रोमावलि और कटार की तरह तनी खड़ी बड़ी-बड़ी मूछें। हरिजड़ित आभूषण उसके शरीर पर ऐसे चमक गये जैसे भादों की रात में बिजुरी। उसने उत्तरीय एक ओर फेंका। दैत्य के मुख की ओर एक तीर तान कर फेंका, जिससे एक क्षण को चक्र रुका। आग की लपटों को लांघता-फांदता हुआ दैत्य के मुख से मणि निकाल कर वह मन्च पर आ खड़ा हुआ। तालियों की गड़गड़ाहट और जयजयकार तथा वाद्यों की हर्ष ध्वनि से वातावरण गूंज उठा। पर···पर राजकुमारी के नयन जो अब गीली पाँखुरी थे भरकर कुआं हो गये। गालों तक अश्रु लुढ़क पड़े। सखियों ने इन्हें प्रेमाश्रु जाना, कोमल मन की वेदना किसी ने न जानी। वे उसे लिवा चलीं विजेता राजा सुदीर्घ बाहु के पास। दिव्याङ्गना ने हारे मन से जयमाला गले में डाल दी। निछावर हुई, आरती हुई, वाद्य मुखरित हो उठे और सखियों ने मंगल गीत गया। सुदीर्घबाहु के पार्श्व में खड़ी राजकुमारी दिव्याङ्गना ऐसी लगी मानो किसी अनाड़ी माली ने चमेली फूलों से लदी डाली—वृक्ष से तोड़ कर पहाड़ से टिका दी हो।

बस, फिर विधिवत विवाह हुआ। सारी रस्में हुई। सोने के मढ़े रथ को जिसके घोड़ों की झालरों पर भी मोतियों की सतलड़ियाँ लटक रही थीं, कनक, चंपा और नागकेशर के फूलों से सजवा कर, भाँति-भाँति का दहेज दे कर अनेक दास दासियों सहित हिरण्यकश्यप ने अपनी बहन को ससुराल विदा किया।

राहों में पड़ाव डालती—बारात जब अपने देश पहुँची, तो हर्ष के समन्दर उफना उठे। महल घृत-दीपों से सजाया गया। जब लावण्यमयी वधू रथ से उतारी गई, तो सास और जेठानियों की आँखों में चकाचौंध हो गई और सपत्नियों के हृदयों में साँप लोटने लगे।

वाह री गोराई, जैसे भीतर का रक्त छलका पड़ता है। अंगों में जैसे नवनीत चुपड़ दिया गया हो। पलकें उठतीं तो बरौनियाँ भौंहों पर प्रहार करतीं। पतली, नुकीली, ऊँची नासिका पर मोती झूल जाता बड़ा सा। वे वंशी ओठ जैसे गुड़हल के फूल निचोड़ कर लेप किया गया हो और ठोड़ी के बीचोबीच छोटा सा गढ़ढ़ा। अब जादू भरा रूप था।

सुदीर्घ बाहु ने एक सप्ताह तक दरबार नहीं लगाया। उसकी उदासी क्रोध में बदल गई। जब रातों को मनुहार के बाद भी नव परिणीता के मुँह

पर हर्ष और हँसी की कोंपल तक न फूटी। हँसती तो थी, पूर्णमासी आयेगी तो चाँदनी को बरसना ही पड़ेगा···परन्तु उस हँसी में निष्प्राण पाषाण खंडों की टकराहट ही होती, चेतन झरनों की कलकल नहीं। सुदीर्घबाहु को उसका स्पर्श ऐसा लगता, जैसे छोटी सी बर्फ़ शिला को छू लिया हो। ठंडी, बेजान। उसके हर प्रश्न का उत्तर गर्दन हिला कर देती, जिह्वा नहीं। ग्रहण लगने से कुछ पूर्व भयातुर चन्द्रमा-सा द्युतिहीन चेहरा उठाने पर ऊपर उठता, पर आँखो में आँखें डाली जातीं, तो वधू की जलमयी आँखें धरती के अक्षर गिन उठतीं। नशीली निगाहों का जवाब पनीली आँखें न दे पातीं।

सुदीर्घबाहु योद्धा था कोरा योद्धा। विश्वविजेता बनने की आकांक्षा दिल में संजोये हुये। युद्ध और युद्ध, बस यही उसका कार्यक्रम था। योजनायें और तलवार से अधिक उसे किसी चीज से प्रेम न था। रानियों, प्रेम, विवाह और विलास उसके लिये वही महत्व रखते थे, जो किसी बालक के लिये बिना माँगे मिल गये खिलौने का होता है, जिनसे एकाध बार खेला और खिसका दिया; फिर प्याली में लगी हुई मदिरा की आखिरी बूंद का, जिसे अभी-अभी धो दिया जाना है। उन्मुक्त उच्छृंखल समर्पण का आदी योद्धा खीझ गया, क्रोध में भर गया और एक रात एक दीपाधार उठा कर उसने दिव्यांगना के सिर पर दे मारा। सिर फट गया, विषधरा काली लटें खून से लाल हो गईं। जब दिव्यांगना को चेत हुआ, तो सुदीर्घबाहु वहाँ से जा चुका था, मदिरा-पात्र ढ़ढ़का पड़ा था और दासी कुसुमकला उसका सिर गोद में लिये थी। और दूसरे दिन सुधीर्घ बाहु के आदेश से उसे अंतःपुर के इस रंगमहल से हटा दिया गया। एक कोठरी और एक अटारी उधर दे दी गई, जिधर पशुओं का आवास था। दिव्यांगना की हिचकियाँ फूट पड़ीं—

—मेरा अपराध ? नारी हूँ यही न ?

— हाँ नारी हो यही तुम्हारा अपराध है, बल्कि उससे भी बड़ा कि नारी क्यों हो···। संकेत मात्र पर नाचने वाली, हँसने वाली। रोनेवाली कठपुतली क्यों नहीं हो···?

—मैं··

—बस चुप। दीवारों के भी कानहोते हैं।—मायके से आई हुई दासी कुसुम कला ने मुँह पर हाथ धर दिया।

सुदीर्घ बाहु के लिये इस दंड पर सौतों ने मनौतियाँ पूरी की घी के दिये जलाये। रोज सांझ होती है, सबेरा होता है, धरती फटती नही है, आकाश से वज्र गिरता नहीं है, कोई व्याधि नही व्यापती, मौत आना नहीं चाहती, दिव्यांगना जी रही है। साँसों के डोरे बड़े मजबूत हैं।

मौसम में वासंतिया खनक थी। खेतों में सरसों पीली, बागों में फूल पीले, मंदिरों में पताकायें भी पीली लहरा फहरा रही थीं। पछुआ हवाओं की उम्र जवान हो गई थी। मांसल माधुरी गंध ने वातावरण को बाँहों में बाँध रखा था। छूटे तो कोई ? बचे तो कोई ? तभी पशु बाड़े में किसी पुरुष का कंठ सुनाई पड़ा—

महाराज की आज्ञा सात मेषों के लिये हुई थी और मैं समझता हूँ कि ये सात उपयुक्त हैं, साम।

पुरुष स्वर और वह भी पशु बाड़े में ? और इतना उदात्त, सौम्य, गंभीर और मृदु···? दिव्यांगना के कानो में गये गुजरे जमाने के बाद ऐसा पुरुष कंठ पड़ा था। वह चौंक उठी। यूँ तो वह रोज ही इस गवाक्ष को खोलती थी। ऊँचे पूरे डील-डौल की दुधारु गायों के थनों में मुँह लगाये मखमली बच्छे पूँछ हिलाते। मस्ती में बैठे काले चिकने पहाड़ी डील के मस्त भैंसे और दूसरी ओर हिरनों के बच्चे—ऐसे नयनाभिराम कि जिन को देखते ही प्यार चू पड़े। और भी तमाम पशु थे। ये पशुबाड़ा लोहे की सलाखों से घिरा हुआ बड़ी दूर तक चला गया था। पशुओं के ओढ़ावन कीमती होते। दासियाँ या ग्वालिनें ही इन पशुओं की देख भाल करतीं। कभी-कभी जंगली से दिखने वाले दास भी आते थे, पर बहुत कम ऐसा होता।

दिव्यांगना ने गवाक्ष खोल दिया। सामने देखा, तो एक काला कुरूप पुरुष हाथ में खांड़ा लिये खड़ा है। उसकी कमर में एक कपड़ा है और एक कपड़ा सिर में। बस और···और सामने ही एक भैंसे की पीठ सहलाते हुये राजकुमार-सा दीखने वाला एक भद्र पुरुष। हलका गेहुँआ रंग पर बलिष्ठ सुडौल शरीर, भरापूर, रोबीला चेहरा, कमरा में कटार और तरकश भर तीर। शायद बलि के लिये पशु छाँटे जा रहे थे। इस छंटनी में उड़ती हुई राजकुमार की नजर गवाक्ष पर पड़ ही गई। पड़ी और फिर गड़गई। यह···यह मानवी रूप है···। यहाँ तो आँख नहीं ठहरती। ऊपर कोई चित्रशाला तो नहीं। किसी शिल्पी ने कोई चित्र बनाकर तो नहीं टिका दिया खिड़की पर ? अचल अबोल एकटक वह खिड़की की ओर देखता रहा। सहसा उसकी आँखों में तरलता आ गई। नई रानी के निष्कासन की कथा महलों से उड़कर महलों के आस पास भी फैल गई थी। तो···तो इस रूप का ऐसा अनादर···! आह, हीरा कूंजड़े की डलिया में गिर गया। सड़ा शाक समझ कर फेंक दिया उसने। अजनबी आँखों ने अजनबी आँखो की भाषा पढ़ी, परिचय मिल गया। नयनों के इस संग्राम में कोई विजित नहीं कोई पराजित नहीं। दाह और चाह के मेले लग गये।

थोड़ी देर बाद में जाने क्या हुआ कि सामने भैंसे खूंटों से बाँध दिये। दूसरे दिन सुना कि पशुओं में रोग फैलने की संभावना दिख रही है। अच्छा है प्रथम ही उपचार हो जाये। सुदीर्घ बाहु से अनुमति ले ली गई की दिन में दो तीन बार, कम से कम साँझ सबेरे अंबुजदेव की देख-रेख में पशुओं का उपचार होता रहे। पशु विशेषज्ञ को कुछ स्वर्ण मुद्रायें दे दीं गई। दुपहर, साँझ, सुबह किसी भी समय अंबुजदेव आता और सुभाषी, धीरा, मेनका गायों के नाम ले कर बुलाता। गायें तो न बोलतीं, पर ऊपर गवाक्ष के पट धीरे से तत्काल खुल पड़ते। दो मीनाक्षी दृग बंजारे से डोलने लगते। तृष्णाहत और गली भूले से ! आँखों ही आँखों में इतना संलाप हुआ कि जाने कितने अनाम महा-काव्यों की रचना हो गई।

रानी दिव्यांगना का कपास होता हुआ वदन फिर गुलाल होने लगा। दिशा भूली बहारें रानी के कक्ष में झाँकने लगीं। परदेसी मुस्कान फिर से ओंठों के घरौंदे में बसेरा लेने लगी और एक दिन संयम का सेतु टूट गया। दासी ने जा कर अंबुजदेव को संकेत किया कि रानी जी स्मरण कर रही हैं। अंबुज ने आँखें फाड़ कर दासी को देखा, फिर देखा। क्या वह जो कह रही है, वह सत्य है ?

जब सोपान पर अंबुज देव चढ़ा तो उसके पैर लड़खड़ा गये। उसे सुदीर्घ बाहु का क्रूर चेहरा याद आ गया। उसके पाँव जकड़ कर रह गये। परन्तु पाँव इस समय अवश थे, चढ़ते गये और ऊपर जा कर ही रुके। मुँह लगी दासी बाहर चली गई।

रानी स्नान करके आई थीं आकाशी नीली साड़ी सिर पर से खिसक पड़ी थी लटों से पानी चू रहा था और अंबुज देव सोच रहा था कि हिमालय का कोई खंड कोई द्युतिमान टुकड़ा तो नहीं मानसरोवर झील में प्रतिबिम्बित हो रहा। मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ? और···और आँखों का दूसरा जोड़ा साहस, शौर्य और ओज भरी गठन को निहार रहा था। 'काजल' के 'पहाड़' पर आत्माहुति देने से पूर्व जब भी कभी दिव्यांगना ने स्वप्न देखे, शायद ही राजकुमार उसके स्वप्नों में आया करता था।

अच्छी तो हैं—प्रकृतस्थ होते हुये अंबुज देव ने पूछा।

हाँ—काँपते स्वर में रानी ने उत्तर दिया।

मुझ तुच्छ का परिचय। मंत्रि पुत्र हूँ, नाभाग देव का पुत्र।

महाराज मुझसे भ्रातृवत स्नेह रखते हैं। मैं आपको प्रजावती संबोधन देने की धृष्टता करूँ ?

प्रजावती सुन कर रानी की देह-पुरइन से कमलावली फूट पड़ी।

कहाँ तो दिन विंध्याचल हो गये थे, काटे न कटते थे और अब वही दिन पल-छिन के हो गये। रात दुश्मन हो जाती और दिन पकड़ते, थामते भा सरक जाता। दुखों से जैसे कोई पुरानी पहचान रही हो कभी की।

एक दिन जैसे ही अंबुज देव अटारी से उतर कर गया, रानी अस्त-व्यस्त केशों को सहलाती बाहर की छत पर आई। उसकी दृष्टि सामने पड़ी, आगे वाले महल के झरोखे से चार पाँच उसकी सपत्नियाँ उसे आनेग्य दृष्टि से घूर रही थीं। दिव्यांगना का कलेजा बुरी तरह धड़क उठा और वह गिर पड़ी। यद्यपि उसकी देह और प्राण के बीच की खाई को कोई नवनीत से भर रहा था, फिर भी कोई कितना ही प्यासा क्यों न हो, लाख प्यास लगी हो, पर पानी के लिये गड्ढ़े में उतरने पर पाँव लड़खड़ाते ही हैं···। दूसरे दिन से दो प्रहरी हाथ में नंगी तलवारें लिये अटारी के द्वार पर दिखाई देने लगे।

—सौतों ने शिकायत कर दी होगी?

—हाँ और क्या? सौतें तो चून की बुरी होती है।

फागुन की फगुनाहट पेड़ों में जड़ से फुनगी तक बस गई थी अलस मदांध पछुआ बसंती रंग लिये अंगनाई, अमराई सब को छूती फिर रही थी, पर सुदीर्घ बाहु सैन्य निरीक्षण कर रहा था। गजों, रथों, घोड़ों और पैदल सबका मशालों का प्रकाश छावनी ही नहीं नगर और गलियों तक फैल रहा था। एक घबराहट, एक अचल हलचल सब में व्याप्त थी। उत्तरवर्ती अजेय वीर शत्रु के आक्रमण की संभावना है, किंतु इस अटारी में दूसरा ही संसार बस रहा है। दूध बरसाती किरणों में दिव्यांगना और अंबुज देव नहा रहे हैं आत्मलीन इतने भरे हैं कि कुछ कहने की, कुछ सुनने की, सुनाने की सुध बुध दो में से किसी को नहीं तभी हृदय विदारक चीख सुनाई पड़ी। चीख नीचे के प्रहरियों की है और धड़धड़ाता हुआ सुदीर्घबाहु ऊपर आ गया। उसकी तलवार में रक्त लगा था। वही रक्त लगी तलवार ले कर रानी पर झपटा। बस, पल में गर्दन धड़ से अलग हो जाती, लेकिन कुसुमकला भीतर से निकल कर पाँवों पर लोट गई—महाराज रानी इस समय अवध्या है····आपका वंशज उनकी कोख में है अन्नदाता···।

—मेरा वंशज···। क्रोध में दाँत पीसता हुआ। सुदीर्घबाहु चीखा। तलवार उठी की उठी थी। दासी पैरों को जकड़े थी। किसी भी उत्तर के पहले ही नीचे से और बराबर के महलों से हाहाकार सुनाई पड़ा। रक्षा मंत्री बिना किसी अनुमति या सूचना के ऊपर चढ़ आया। मामले को समझते हुये भी

नासमझ बन गया—महाराज, शत्रु ने पश्चिमी फाटक तोड़ लिया है। शीघ्र चलें। यह समय दूसरा है देव! शीघ्र चलें। कह कर मन्त्री जिस वेग से आया था उसी गति से उतर गया। मुड़ते-मुड़ते सुदीर्घबाहु ने आदेश दिया—प्रभात की किरण फूटने से पूर्व इस चरित्रभ्रष्टा को उसके पिता के घर पहुँचा दिया जाये। यहाँ से तत्काल निकाल दिया जाये। अपनी कलंक की गठरी वहीं उतारे···मेरा वंशज···और···इस कृतघ्न को कारागार में डाल दिया जाये, इसके भाग्य का निर्णय बाद में होगा···। फुफकारता हुआ सुदीर्घबाहु नीचे उतर गया।

रात आधी होने को आ गई थी रथारूढ़ सैनिक और सहधर्माधिकारी अर्धमूर्च्छित रानी को लिये पूर्व दिशा की ओर जा रहे हैं। जाने कितने गाँव, नगर, वन, बीहड़, नदी, नाले पार हो गये। तभी घोड़े की टापें जोर के सुनाई दी और एक अश्वारोही रथ को रोकने का आग्रह करता हुआ रथ के सामने आ गया। वह अंबुज देव था। सैनिकों की आँखें लाल हुई पर अंबुज देव धर्माधिकारी के पाँवों पर गिर गया—पूज्य पिता! प्रजावती को तलवार से काट कर दो कर दें। मुझे जो सजा चाहें दें, किंतु उन्हें पितृग्रह न ले जायें। परित्यक्ता, कलंक का टीका लगाये क्या वे वहाँ जाकर जी सकेगी? क्या इससे उनके पितृकुल का माथा नहीं झुक जायेगा? नहीं पिता···ऐसा न करें। देव स्त्री लता होती है। महारानी महाराज के द्वारा ठुकराई दुखिता थीं। उन्होंने मुझे अपना अवलम्ब बनाया था। अपराधी मैं हूँ। इसका दंड उनका पितृकुल क्यों भोगे, देव?

रथ जब महल के द्वार पर आया, तो दिव्यांगना को इस प्रकार आया जान सबको आश्चर्य हुआ। परन्तु यह जान कर कि वे अस्वस्थ हैं और उपचार के लिये अपने देवर के साथ आई हैं, सब को सन्तोष हो गया। अब परिवार, माता बहने सब प्रसन्न हो उठे। सखियाँ लिपट लिपट कर गले मिलीं। अंबुज देव का अपूर्व स्वागत हुआ।

दिव्यांगना मनस्ताप में जली जा रही थी। जब उसकी सखियाँ, भावजें, या बहने उसे छेड़तीं तो वह सूखे गले से कृत्रिम हँसी हँस कर चुप हो जाती। न अन्न का एक कौर उसके मुँह में जाता और न रात को आँख की पाखों पर नींद का एक पखेरु भी आकर बैठता। वैद्य औषधि देता पर औषधि क्या करे। रोग हो तब न? असंख्य प्रश्न उसके मन में थे। यह बात कब तक छुपेगी? अंबुज देव कौन है? वह यहाँ उसके साथ क्यों आई? वास्तविकता कब तक छुपेगी, वह तो एक दिन खुल कर रहेगी। फिर वास्तविकता खुलने

पर क्या होगा ? वह क्या करे ? आत्म हत्या ? यहाँ पितृगृह आकर ? करना था, तो वहीं करती । क्या वहाँ लगाने को आग या डूबने को पानी न था, गले में बाँधने को रस्सी का टुकड़ा न मिलता ?, इस रोग का क्या उपचार हो ? हे अनन्त, हे प्रभु क्या करूँ ? हे मृत्यु···समेट ले मुझे अपनी गोद में ।

चाँदनी धरती पर कलश के कलश लुढ़काये जा रही थी । आज फागुन की पूर्णिमा थी । निबिया के फूलों की गन्ध सब कुछ महकाये दे रहीं थी । अंबुज देव काफी देर छटपटा कर सो गया था । सहसा उसकी छाती पर एक मुलायम देह आ गिरी । अंबुज ने आँखे खोल दीं । सारे, दीप बुझे थे । दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला । मन के भावों को ढोने की शक्ति शब्दों में न थी, पर आँखों में थी । उन्होंने जल बरसा-बरसा कर बहुत कुछ कह डाला । बड़ी देर हो गई, तो किसी के आने की आहट भयभीत कर गई ।

—बस तनिक देर और···और रुको । रात्रि अभी शेष है ।

—नहीं··· ।

—प्रजावती··· ।

—दिव्या कहो, प्रजावती नहीं···। मैं तुम्हारी दिव्या···हूँ ।

—दिव्या थोड़ी देर और···प्राणों की आग को तनिक शीतल तो हो लेने दो ।

—बस···ये अग्नि शीतल नहीं होती अंबु···।

—जल्दी क्या है··· ?

—चलने दो···आज पूजा है न ?

कैसी पूजा ? क्या है आज ?

—आज···आज अग्निपर्व···।—दीर्घ साँस कक्ष में भर गई ।

—अग्नि पर्व···अग्नि पर्व में क्या होता है ?

—तुम नहीं जानते···।—जैसे दिव्या कुछ याद करती हुई बोली ।

—अरे तुम नहीं जानते, तुम्हें नहीं पता । ये प्रह्लाद बहुत बिगड़ गया है । बस, राम-राम की रट लगाये रहता है, उसे दंड दिया जा रहा है । ज्येष्ठा भगिनी होलिका उसे ले कर अग्नि में प्रवेश करेगी···चलने दो···। अंबुज ने चलते चलते दिव्यांगना की मृदुल उंगलियाँ ओठों पर रख लीं ।

जन जीवन को भयभीत करने के लिये, राम से विमुख रखने के लिये हिरण्यकश्यप ने खुले मैदान में चिता बनवाई और अपार जन समूह की उपस्थिति में चिता में आग दे दी गई । लपटें आग छोड़ने लगीं और आश्चर्य कि अग्नि से अपराजित होलिका का आंचल जल उठा । उत्तरीय लपटें छोड़ने लगा, फिर उसके खुले केश जलने लगे । वह चीत्कार कर उठी । जन समूह

में खलबली मच गई तभी किसी ने देखा, किसी ने न देखा···पर जिन आँखों को देखना था, उन्होंने देख ही लिया कि एक मानवी आकृति दौड़ती हुई आई चिता के पास और लपलपाती लपटों में कूद पड़ी । होलिका को थाम कर बैठ गई ।

अंबुज देव हाहाकार कर उठा, चिल्लाया—प्रजावती-प्रजावती, दिव्या··· दिव्या···दिव्या, प्रजावती··· ।छटपटाते हुये उसने लोहे के खंभे में सिर दे मारा । माथा फोड़ कर रक्त बह निकला । तो···यही था अग्नि पर्व, मना लिया तुमने अग्निपर्व···दिव्या···दिव्याङ्गना मना लिया अग्नि पर्व···· । मना लिया···अर्धविक्षिप्त की सी अवस्था में लोहे के खंभे से टिका रहा । फिर उठ कर जनरव से दूर जा पड़ा । अब चिता से चट-चट की आवाजें आ रही थीं । दिव्यांगना और होलिका दोनों जल गई थीं, सिर्फ प्रह्लाद दोनों हाथ जोड़े राम राम रट रहा था । जलती चिता में ।

सबेरा होने में कुछ ही देर थी । झुटपुटे की कनातें चटकने लगीं थी । नदिया के उस पार अंबुजदेव निर्जीव सा पड़ा था । चेहरे पर बहा हुआ रक्त जम गया था । अब उसके जीने का कोई प्रयोजन ? दिव्या अग्निपर्व मना चुकी थी । उसने अपना शिथिल हाथ उठा कर छाती पर रखा । रात की देह गंध अभी बसी थी वहाँ, लटों की मुलायम रेशमी छुवन अभी शेष थी । उसने चिता की दिशा में देखा । अब वहाँ क्या था ? राख उड़ रही होगी । अबकी बार वह जी भर कर रोया । जब आँखों का उफान चुक गया, तब कुछ हलका हुआ और नदी से लगे सघन बन में अदृश्य हो गया । अंबुज जंगल में चला गया और दिव्यांगना अपना रहस्य छिपाये ही आग में भस्म हो गई । कथा खतम चलो करो पूजा ।

कथा की समाप्ति पर हाथ के चावल सबने छिड़क दिये ।

—अम्मा जी, होलिका के जलने की कथा तो सब जगह मिलती है, पर दिव्यांगना के जलने की कथा नहीं मिलती ।—छोटी बहू बोली ।

हाँ बेटी, हमारे देश की मर्यादा यही रही है । हमारे यहाँ के साधु सन्तों, तपसियों ने, बड़े लोगों ने बुरी बातें सदा छिपाई है, अच्छी बातों को ही सदा उजागर किया है । हमारा देश घाव छिपाना जानता है बेटी···जलाओ दिया ।

आँगन में बड़ा सा चौक पुरा है । गोबर से बने बल्ले बरूलों की होली खड़ी की गई है । थाली में हल्दी गुलाल, चावल फूल आदि पूजन सामग्री रखी है । सास ने कथा समाप्त कर के पूजा करने का आदेश दिया । बड़ी बहू ने कलश दीप जलाया, मंझली ने नये अन्न की बालें आम्र मंजरी, उठाई, छोटी ने पान बताशा ।

नजर बाग, छतरपुर, म० प्र०

साहित्य-कला-संस्कृति समाचार

कलातीर्थ भारत-भवन का उद्घाटन-समारोह, संस्कृति-परिक्षेत्र की स्थापनाः स्थल-चयन, तीन साहित्यिक-सांस्कृतिक संध्याएँ, बैजू बावरा स्मृति संगीत-समारोह, साहित्यकार-समीक्षा-निशा, महाराज परीक्षित-स्मृति-समारोह, दो सांस्कृतिक ग्रामः शास्त्रीय संगीत-कला और कवि दुष्यंत के नाम, संजय जनता थियेटर की घोषणा, विविध साहित्यिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक-पत्रकारिक गतिविधियाँ, बुन्देली फाग-महोत्सव।

•

कलातीर्थ भारत-भवन का उद्घाटन-समारोह

भोपाल—१३ फरवरी, ८२ को मध्य प्रदेश के नये कला-तीर्थ-भारत-भवन का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा कि म० प्र० में भारत-भवन का निर्माण करके एक अनूठी-अद्वितीय चीज प्रारम्भ की गई है, जिसमें देश के अनेक कलाकारों को खींचकर लाये जाने के लिए उन्होंने म० प्र० के मुख्य मंत्री श्री अर्जुनसिंह को हार्दिक बधाई दी। उन्होंने कहा कि जो वस्तु भोपाल में बन गई वह दिल्ली या देश के अन्य भागों में भी नहीं है। भारत अनूठी कला-संस्कृतियों का संगम-स्थल है, जहाँ विश्व के हर फैशन व विचार की सुस्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है, किन्तु हम विदेशी चकाचौंध में दिग्भ्रमित होकर उसे भूले हुए हैं। श्रीमती गांधी ने बताया कि दिल्ली में एक भोज के दौरान उन्होंने स्वीडन के प्रधान मंत्री और उद्योग मंत्री तथा उनकी पत्नियों को अपनी आंचलिक भेष-भूषा में देखा था। हम क्यों नहीं अपने लोक नृत्यों और लोक परिधानों को अपना सकते। राज्यपाल श्री भगवत-दयाल शर्मा तथा प्रसिद्ध चित्रकार श्री जगदीश स्वामीनाथन ने भी भारत की प्राचीन एवं नवीन लोक कलाओं के संदर्भ में किए जा रहे नित-नवीन प्रयासों की चर्चा की। मुख्य मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने सबका स्वागत करते हुए कहा कि हमारा प्रयास है कि मध्य प्रदेश के कलाकार विश्व के कलाकारों के सम्पर्क में आकर नए अनुसंधान करें। प्रधानमंत्री ने श्री के० जी० सुब्रमण्यम को एक लाख रुपये का कालिदास पुरस्कार तथा सर्वश्री सत्यदेव दुबे, शानी और

जयदेव बघेल को २१-२१ हजार रुपये के राज्य स्तरीय शिखर सम्मानों से सम्मानित किया।

संस्कृति परिक्षेत्र के स्थल-चयन

खजुराहो—संस्कृति-परिक्षेत्र के स्थापनार्थ स्थल-चयन करने के लिए सर्वश्री ऊषा भगत, जोसक स्टाइन, डा० मुल्कराज आनंद, व० व० कारन्त, डा० सुन्दरराजन, सुनील कोठारी, के० के० चक्रवर्ती, अशोक बाजपेई आदि विशेषज्ञों की एक समिति ने खजुराहों के निकटवर्ती विभिन्न स्थलों का निरीक्षण किया और चित्रगुप्त मंदिर और खजुराहो-अशोका होटल के मध्य स्थित स्थल का चयन करते हुए पारस्परिक सहमति व्यक्त की। खजुराहो के वार्षिक नृत्योत्सव एवं अन्य साहित्य-परिक्षेत्र की स्थापना के प्रस्ताव का सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के बुद्धिजीवियों व कलामर्मज्ञों ने स्वागत किया है।

तीन साहित्यिक-सांस्कृतिक संध्यायें

जबलपुर—मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक राजधानी-जबलपुर में निरंतर चलते रहते साहित्य-कला-संस्कृति-विषयक समारोहों के दौरान तीन संध्याएँ अविस्मरणीय रहीं।

'मित्रसंघ' के तत्वावधान में युवा व्यंग्यकार श्रीराम ठाकुर दादा की नवीन कृति-'पच्चीस घण्टे' (व्यंग्य उपन्यास) पर चर्चा—गोष्ठी का आयोजन डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन' की अध्यक्षता में हुआ। डा० सुमन ने कहा कि साहित्य का मूलाधार संवेदना है। उसे समेटकर रखना ही साहित्यकार का धर्म है। हमारा साहित्य हमारी मिट्टी से जुड़ा होना चाहिए। यह बात श्रीराम ठाकुर दादा की कृति में अवलोकनीय है। उन्होंने समाज में व्याप्त व्यंग को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है जो एक साधनापूर्ण कार्य है। इसके पूर्व आयोजित चर्चा गोष्ठी में सर्वश्री सच्चिदानन्द सेंकटकर, गणेश प्रसाद नामदेव, अजित वर्मा, रास बिहारी पाण्डेय, हरिकृष्ण त्रिपाठी, डा० नरेश पाण्डेय आदि विद्वानों ने सक्रिय भाग लिया। इसी संस्था द्वारा श्रीराम अधीर के कविता संग्रह—'बूंद की थाती' का समर्पण समारोह भी सम्पन्न किया गया।

'गुंजन-कला-सदन' के तत्वावधान में 'गीत-गंगा' की १५वीं प्रस्तुति का सफल आयोजन श्री हरिकृष्ण त्रिपाठी की अध्यक्षता तथा श्री मुकुन्ददास माहेश्वरी के मुख्य आतिथ्य में हुआ, जिसमें प्रमुख वक्ता के रूप में डा० कृष्ण कुमार हूँकने कहा कि साहित्यिक संस्थाओं एवं साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वे आम जनता में सत्साहित्य के प्रति समझ एवं रुचि पैदा करे। इस अवसर पर सम्पन्न कवि गोष्ठी में सर्वश्री धर्मदत्त शुक्ल 'व्यथित', प्रदीप

उपाध्याय, अभय तिवारी, राज जबलपुरी, प्रो० हनीफ अंसारी, हंसमुख, स्नेही, सगीर, रियाज, बड़कुल, श्रीमती विद्यारश्मि और पं० रुद्रदत्त दुबे ने सरस कविताओं एवं गजलों का पाठ किया। श्री ओंकार श्रीवास्तव ने आभार प्रदर्शन किया।

'पाठक मंच' द्वारा सुकवि प्रमोद वर्मा के काव्य-संग्रह—'कविता दोस्तों में' पर लिखित राजेन्द्र दानी की समीक्षा पर चर्चा-गोष्ठी आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता श्री शिव शंकर शर्मा ने की और संचालन किया श्री तरुण गुहा वियोगी ने। चर्चा में सर्वश्री डा० मलय, डा० उमाशंकर तिवारी, ज्ञानरंजन विजयशंकर, अशोक शुक्ल, तपन बनर्जी, महेश बाजपेई, अरुण पाण्डे, सीताराम सोनी, राकेश दीक्षित, नन्दकिशोर पाण्डेय आदि वक्ताओं ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए तथा कवि-साधना की सराहना की।

बैजू बावरा स्मृति संगीत-समारोह

चन्देरी (गुना)—स्वर सम्राट बैजू बावरा की जन्मभूमि चन्देरी उस दिन धन्य हो उठी, जब नगर के भव्य रंगमंच पर संगीत की अपूर्व स्वर लहरी संगीतकारों के विभिन्न वाद्यों के स्वरों में वातावरण में गूंज उठी और डा० रवीन्द्र के मुख्य आतिथ्य में कवि-सम्मेलन का सरस आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

साहित्यकार-समीक्षा-निशा

दमोह—जिला हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, दमोह की द्वितीय साहित्यकार-समीक्षा-निशा में कवि श्री राजधर जैन 'मानसहंस' की काव्य-रचनाओं की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए डा० छविनाथ तिवारी ने कहा कि कवि की रचनाओं का भावपक्ष राष्ट्र, संस्कृति, दर्शन, प्रकृति एवं समसामयिक-जीवन, के विषयों को लेकर पुष्ट और समृद्ध हुआ है। प्रतिबद्धता या प्रगति-शीलता का तामझाम कवि में नहीं दिखलाई पड़ता। कवि को मुक्तछन्द में पर्याप्त सफलता मिली है। समीक्षा पाठ के बाद हुई चर्चा में सर्वश्री प्रो० टी० एन० सिंह, जगमोहन बाजपेई, सुरेशकांत, रामशंकर खरे, जी० एल० सोनाने आदि ने सक्रिय भाग लिया तथा सभी ने एकमत से कवि को एक सफल रचनाकार निरूपित किया।

महाराज परीक्षित-स्मृति-समारोह

जैतपुर-बेला ताल (हमीरपुर)—गायत्री-परिवार द्वारा दिनाक १७-२० जनवरी, ८२ को आयोजित गायत्री महायज्ञ एवं युग-निर्माण सम्मेलन के दौरान

महाराज परीक्षित-स्मृति समारोह का भव्य एवं अविस्मरणीय समारोह डा० हरगोन्दि सिंह, राठ के संयोजकत्व में सोल्लास सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सर्वश्री भगवान दास बालेन्दु, भैया लाल व्यास, राजकुमार चौबे, अजयकुमार राजपूत, पं० नाथूराम शर्मा, डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', डा० हरगोविन्द सिंह, डा० महेन्द्रप्रताप सिंह आदि विद्वज्जनों ने महाराज परीक्षित तथा नौने अर्जुनसिंह से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्ट खोजपूर्ण आलेख प्रस्तुत किए। समारोह में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव द्वारा महाराज परीक्षित की समाधि की खोज व पुनर्निर्माण, मूर्ति स्थापन, संस्था का नामकरण, व्यक्तित्व-कृतित्व विषयक खोज तथा पर्यटन केन्द्र की स्थापना हेतु प्रयासरत् रहने की आकांक्षा व्यक्त की गई।

दो सांस्कृतिक शाम :
शास्त्रीय संगीत-कला और कवि दुष्यंत के नाम

छतरपुर—गत १४ दिसम्बर ८२ को छतरपुर के बुन्देलखण्ड गैरिज-प्रांगण में शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य-कला का भव्य एवं रोचक प्रदर्शन राज्य संस्कृति विभाग, राजकीय कला परिषद और छतरपुर जिला-प्रशासन के संयुक्त तत्वावधान में सम्पन्न हुआ, जिसमे सर्वप्रथम उस्ताद फरीदुद्दीन डागर ने राग विहाग में अलाप जोड़झाला और धमार में एक रोचक बंदिश प्रस्तुत की। उनका साथ पखावज पर श्री श्रीकांत मिश्रा और तानपुरे पर श्री जुल्फिकार अली ने दिया। उस्ताद डागर के विदेशी शिष्य-द्वय श्री इनोय ट्रांजलर (पेरिस) तथा कुमारी इनोय माइने (स्पेन) ने भी इस भव्य रोचक प्रस्तुतीकरण में भाग लिया।

तदुपरांत कत्थक-नृत्य कलाकार-दम्पत्ति श्री कृष्णमोहन मिश्रा और श्रीमती बास्वती मिश्रा ने क्रमशः एकल एवं युगल नृत्य प्रस्तुत करके उपस्थित श्रोता-दर्शक-समूह को मंत्रमुग्ध कर लिया। इन कलाकारों द्वारा प्रस्तुत कत्थक नृत्य, जय जगदीश कीर्तन, कृष्णलीला, माखन चोरी का नृत्याभिनय आदि सहित अनेक रोचक प्रसंगों का भावपूर्ण अभिनय सराहनीय रहा। इनका सहयोग किया सर्वश्री मतलूब हुसैन ने सितार पर, चन्द्रमोहन ने तबले पर, राम लखन ने पखावज पर तथा ज्वालाप्रसाद ने गायन में। इन सभी कलाकारों ने ठुमरी का रोचक प्रस्तुतीकरण भी किया।

छतरपुर के गाँधी स्मारक भवन में ३० दिसम्बर, ८१ को बुन्देलखण्ड साहित्य और संस्कृति युवा-परिषद के तत्वावधान में कवि दुष्यंत कुमार की पुण्यस्मृति संध्या का आयोजन दो आयामों में हुआ। डा० गंगा प्रसाद गुप्त

बरसैया की अध्यक्षता में आयोजित विचार-संगोष्ठी में सर्वश्री महेन्द्र कुमार 'मानव', वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', जगदीश, किंजल्क, प्रमोद पाण्डेय, डा० बरसैया और अजय कुमार 'उर्मिल' ने संस्मरण और आलेख प्रस्तुत किए। श्री संतोष सिंह बुन्देला की अध्यक्षता में कवि-गोष्ठी का आयोजन हुआ जिसमें श्रीमती कांति खरे, मालती श्रीवास्तव, आदित्य ओम, जगन्नाथ सुमन, रामजी लाल चतुर्वेदी, आदि ने काव्य-पाठ किया।

संजय जनता थियेटर की घोषणा

छतरपुर के बुन्देलखण्ड लोक कला मंडल द्वारा आयोजित लोक नृत्य, संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रमों की सराहना करते हुए केन्द्रीय सूचना-प्रसारण उपमन्त्री कुमारी कुमुद बैन जोशी ने खजुराहो में रंगमंचीय कार्यक्रमों के आयोजन हेतु संजय स्मृति जनता थियेटर की स्थापना हेतुघोषणा की तथा बालकलाकार कु० चित्रा चतुर्वेदो को १०१) की पुरस्कार-राशि प्रदान कर प्रोत्साहित किया।

विविध साहित्यिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक-पत्रकारिक गतिविधियां

मऊरानीपुर में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम का सफल आयोजन गांधी विद्यालय के मंच पर सम्पन्न हुआ जिसमें एकांकी का अभिनय और बुन्देली लोक नृत्य व गीत का प्रस्तुतीकरण स्तुत्य रहा। उज्जैन शिक्षा महाविद्यालय में ७-१० फरवरी ८२ को आयोजित प्राथमिक शिक्षा का लोक व्यापीकरण एवं शैक्षिक पत्रकारिता पर राज्यस्तरीय संगोष्ठी में छतरपुर के सर्वश्री एस० पी० श्रीवास्तव, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' अजीमुल्ला खा, आर० के० त्रिवेदी व हेमकुमार दीक्षित ने प्रतिनिधित्व किया। इस संगोष्ठी में शिक्षा संचालक श्री के० के० चक्रवर्ती ने रचनात्मक शैक्षिक पत्रकारिता करने की बात कही। सहायक संचालक श्री प्रेम नारायण रूसिया ने 'मामुलिया' का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि रचनात्मक पत्रकारिता के लिए ऐसी ही पत्रिकाओं की आवश्वकता है जो शोध एवं अनुसंधान कर रहे व्यक्तियों एवं संस्थाओं की गतिविधियों का प्रचार-प्रसार करें।

बुन्देली फागु-महोत्सव

महोबा—सुविख्यात चन्देल वीर आल्हा-ऊदल की कर्मस्थली महोबा (हमीरपुर) उ० प्र० में गत ६ व ७ मार्च ८२ को जगनिक शोध संस्थान, महोबा के तत्वावधान में द्वितीय द्विदिवसीय फागु महोत्सव का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ। इस अभिनव आयोजन का उद्घाटन करते हुए शासकीय महाविद्यालय, चरखारी के प्राचार्य डा० शिव दत्त द्विवेदी ने कहा कि काव्य और

कला को लोक-हित से सम्बद्ध होना चाहिए। अध्यक्षता डी० ए० वी० कालेज के प्राचार्य श्री उमाशंकर नगाइच ने की। रात्रि में आयोजित सरस काव्य संध्या के दौरान कवियों ने बसंतोत्सव पर काव्य रचनाओं का सुमधुर पाठ किया।

द्वितीय दिवस ७ मार्च को दिन में छतरपुर महाराजा महाविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त के संचालन में सम्पन्न विचार गोष्ठी में सर्वश्री डा० हरगोविन्द सिंह (राठ), श्री कृष्ण चौरसिया (महोबा), डा० एन० पी० गुप्ता (छतरपुर), डा० दिवाकर प्रसाद तिवारी (चरखारी), डा० वीरेन्द्र निर्झर (महोबा), डा० श्याम सुन्दर बादल (राठ), श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' आदि द्वारा क्रमशः 'बुन्देली शब्दों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक यात्रा', 'बुन्देलखण्ड का फाग नृत्य-राई', 'बुन्देली संस्कृति का प्रमुख अंग-पान', 'बुन्देली' कला की परम्परा, 'बुन्देली लोक दर्शन', 'बुन्देली रीति रिवाज' तथा 'बुन्देल खण्ड के पारिवारिक रिश्ते' आदि विषयों पर आलेख पढ़े गए। इन सभी आलेखों में बुन्देलखण्ड की विविध भाषायी तथा सांस्कृतिक परम्पराओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया। जगनिक शोध संस्थान द्वारा छात्र-छात्राओं की कविता, कहानी, निबन्ध आदि की प्रतियोगिताओं की नवीन परम्परा का शुभारम्भ किया गया।

इस बैठक में सर्व सम्मति से दो प्रस्ताव इस प्रकार पारित हुए—(१) आकाशवाणी केन्द्र छतरपुर बुन्देली भाषा संस्कृति और लोकगीतों का स्वरूप बिगाड़ रहा है। अतएव यह बैठक प्रस्ताव करती है कि आकाशवाणी छतरपुर बुन्देली के विद्वानों से परामर्श करके इसमें सुधार करे ताकि आने वाली पीढ़ियाँ दिग्भ्रमित न होकर सही मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।

(२) आकाशवाणी छतरपुर से अभी तक सम्बद्ध झाँसी कमिश्नरी के जिलों को अन्य किसी आकाशवाणी केन्द्र इलाहाबाद, लखनऊ या कानपुर से सम्बद्ध किए जाने की शीघ्र लागू की जाने वाली योजना को रद्द किया जाय।

इसी दिन रात्रि में आयोजित फाग सम्मेलन में छै पार्टियों ने भाग लिया जिनको पूर्व में २० मिनिट प्रति पार्टी को समय देकर उनकी कला का परीक्षण किया गया। करहरा फागदल प्रथम और महोबा फागदल को द्वितीय घोषित किया गया। तदुपरांत इन दो दलों में रात्रि भर जवाबी-प्रतियोगिता चलती रही। श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो इसका रसपान करते रहे। विजयी दल के मुखिया के भाई की दो दिवस पूर्व ही हुई मृत्यु के बावजूद भी यह दल उत्साह पूर्वक अपना प्रदर्शन बिना झिझक करता रहा क्योंकि मृतक भाई की अंतिम इच्छा थी कि उसका दल महोबा फाग-महोत्सव में अवश्य भाग ले।

पत्रिका स्वत्वाधिकारत्व का घोषणा-पत्र

१. प्रकाशन का नाम : 'मामुलिया'
२. प्रकाशन का समय : त्रैमासिक (चैत्र, आषाढ़, आश्विन, पौष)
३. मुद्रक का नाम : श्री रवीन्द्र कालिया
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : इलाहाबाद प्रेस, ३७०, रानी मंडी, इलाहाबाद
४. प्रकाशक का नाम : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', मंत्री
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : बुन्देलखंड साहित्य अकादमी, शुकलाना मुहाल, छतरपुर ४७१००१
५. सम्पादक का नाम : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, प्रधान सम्पादक
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', सह सम्पादक
६. राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : बुन्देलखंड साहित्य अकादमी, शुकलाना मुहाल, छतरपुर-४७१००१
७. स्वामित्व : बुन्देलखंड साहित्य अकादमी, छतरपुर

मैं डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', मन्त्री, बुन्देलखंड साहित्य अकादमी, घोषित करता हूँ कि उपरिलिखित मेरी जानकारी के अनुसार बिलकुल ठीक है।

पंजीयन क्र० १०६२५/८२

—वीरेन्द्र 'निर्झर'
मंत्री